पद घुँघरु बाँध

[१५० अमृत-पत्रो का संकलन]

पद घुँघरु बाँध

[१५० अमृत-पत्रों का संकलन]

भगवान् श्री रजनीश

सकलन व सम्पादन

स्वामी योग चिन्मय

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली : वाराणसी : पटना

प्रधान कार्यालय बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-७
शाखाएँ १ चौक वाराणसी (उ० प्र०)
२ अशोक राजपथ, पटना-४

प्रथम संस्करण १९७४
मूल्य रु० ८.००

मुन्दरलाल जैन, मोतीलाल बनारसीदास चौक, वाराणसी द्वारा प्रकाशित, तथा बाबूलाल जैन फागुल्ल, महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी द्वारा मुद्रित।

आमुख

" प्रभु के मन्दिर में नाचते-गाते, आनन्द मनाते ही प्रवेश होता है।
उदास चित्त की वहाँ कोई गति नहीं है।
इसलिए उदासी से बच।
चित्त को रंगों से भर।
मयूर के पंखों जैसा चित्त चाहिए।
और अकारण।
जो कारण से आनन्दित है, वह आनन्दित ही नहीं है।
नाच और गा।
किसी के लिए नहीं।
किसी प्रयोजन से नहीं।
नाचने के लिए ही नाच।
गाने के लिए ही गा।
और तब सारा जीवन ही दिव्य हो जाता है।
ऐसा जीवन ही प्रभु की प्रार्थना है।
ऐसा होना ही मुक्ति है।

*

"· "जीवन का प्रयोजन न खोज।
वरन् जी—पूरे हृदय से।
जीवन को गभीरता मत बना।
नृत्य बना।
सागर की लहरें जैसे नाचती हैं, ऐसे ही नाच।
फूल जैसे खिलते हैं, ऐसे ही खिल।
पक्षी जैसे गीत गाते हैं, ऐसे ही गा।
निष्प्रयोजन—अकारण।
और फिर सब प्रयोजन प्रकट हो जाते है।
और फिर सब रहस्य अनावृत हो जाते है।

*

' प्रभु-प्रेम की धुन हृदय-हृदय मे गुजा देनी है।
मनुष्य का हृदय-मदिर रिक्त और सूना होकर पडा है।
तर्क की राख के अतिरिक्त वहाँ और कुछ भी नही है।
और हृदय कोई ऐश-ट्रे तो है नही कि इस राख से प्रफुल्लित हो उठे।
हृदय को चाहिए फूल—प्रेम के, प्रार्थना के, परमात्मा के।
हृदय को चाहिए सगीत—आत्मा का, अदृश्य का, अमृतत्व का।
हृदय को चाहिए सोम—आलोक का, आनन्द का, अनुग्रह का।
जा—प्यासो के पास।
गा और उनके हृदयो पर प्रभु-प्रार्थना की वर्षा कर।
नाच और उन्हे भी इस नृत्य मे निमन्त्रित कर ले। "

*

भगवान् श्री रजनीश के इन अमृत-वचनो के साथ प्रस्तुत है उनके द्वारा विभिन्न साधको एव प्रेमीजनो को लिखे गये पत्रो का छठवाँ सकलन—"पद घुघरु बाध।"

पिछले पाँच प्रकाशित हुए पत्र-संकलन है क्राति-बीज, पथ के प्रदीप, प्रेम के फूल, अन्तर्वीणा और ढाई आखर प्रेम का।

आगामी दो सकलनो के नाम होगे 'घूघट के पट खोल' और 'जिसने चाखा रस हरिनाम का।'

*

इन पत्रों को पढ़ते समय आप अनुभव करेंगे कि उनका उद्गम एक ऐसे

रहस्यमय व्यक्तित्व से हुआ है जो जीवन को उसकी परिपूर्णता में जीता है।

और रहस्यमय व्यक्तित्व का अर्थ है ऐसा बहु आयामी व्यक्तित्व जो अथाह है।

जहाँ जीवन अपनी समग्रता मे प्रगट हुआ है ।

जहाँ कुछ भी ऐसा नही, जिसकी निन्दा व न-कार संभव हो ।

भगवान् श्री का व्यक्तित्व श्रीकृष्ण जैसा है ।

नाचता-गाता ।

प्रभु-कृपा की सतत वर्षा में डूबा ।

आनन्द व लीला से परिप्लावित ।

उत्सव ही उत्सव--प्रति पल ।

जो है--एक अहोभाव ।

एक धन्यता ।

एक मुक्ति ।

एक भागवत चैतन्य ।

और यह सब की सभावना है ।

क्योकि, प्रत्येक व्यक्ति बीज है--परमात्मा का !

यदि यह बीज टूटे, अकुरित हो और अपनी समस्त सभावनाओ को उपलब्ध हो तो परमात्मा प्रगट हो जाता है ।

अर्थात् व्यक्ति अपने चरम विकास पर परमात्मा ही हो जाता है ।

तब व्यक्ति स्वय मिटकर भगवान् हो जाता है ।

*

ये पत्र व्यक्ति की उस परम सभावना की ओर बार-बार इशारा करते है ।

अनेक-अनेक आयामो से ।

अनेक-अनेक उपायो से ।

अनेक-अनेक मार्गों से ।

ये पत्र आपको जगायेंगे, प्रेरित करेंगे ।

उस परम जीवन के लिए ।

जहाँ आनन्द ही आनन्द है ।

प्रकाश ही प्रकाश है ।

अमृत ही अमृत है ।

जहाँ जीवन और मृत्यु से परे परम जीवन है ।

भागवत चैतन्य का ।

*

उस परम जीवन की ओर आपके कदम उठें।
आप आत्म-क्रान्ति से गुजरें।
और अमृत को उपलब्ध हों।
इस प्रार्थना के साथ प्रस्तुत हूं।
"पद घुंघरु बांध।"

ए-वन, वुडलेण्ड्स,
देशबन्धु मार्ग,
बम्बई-२६

—स्वामी योग चिन्मय के प्रणाम

अन्तर्वस्तु

आमुख स्वामी योग चिन्मय

१	अह अज्ञान है—प्रेम ज्ञान है	१७
२	प्यास की पीडा ही अन्तत प्राप्ति बन जाता है	१८
३	मृत परम्पराओ व दासताओ से मुक्ति	१९
४	सत्य के पथ पर अडिग और अदम्य साहस आवश्यक	२०
५	नये जन्म की प्रसव-पीडा—रिक्तता व अभाव का साक्षात्	२२
६	मन के घास-फूसो की सफाई	२४
७	घन का अन्धापन	२५
८.	विश्वास-अविश्वास के द्वन्द्व से शून्य मन	२६
९.	साधुता—काटो मे रह कर फूल बने रहने की क्षमता	२८
१०	समय के साथ नया होना ही जीवन है	२९
११	जो है उसी का नाम ईश्वर है	३०
१२	असुरक्षा का स्रोत—सुरक्षा की अति आतुरता	३१
१३	जीओ पल-पल—न टालो कल पर	३२

१४ ज्ञान-सूत्र—"यह भी बीत जायेगा" ३४
१५ प्रार्थना में शब्द नही—सुने जाते हैं भाव ३६
१६. धर्म अभिव्यक्ति की सतत रूपान्तरण प्रक्रिया ३८
१७. ईर्ष्या के सूक्ष्म हैं यात्रा-पथ ३९
१८ यही जवाब है इसका कि कुछ जवाब नही ४०
१९. स्वीकार से—शान्ति, शून्यता और रूपान्तरण ४१
२०. प्रतीक्षारत तैयारी—विस्फोट को झेलने की ४२
२१ अहकार चुराने वाले चोर ४३
२२. मिटने की तैयारी रख ४४
२३. एक ही भासता है अनेक ४५
२४. स्वीकार से दु ख का विसर्जन ४६
२५ जन्मो का अन्धेरा और ध्यान का दिया ४७
२६. प्रार्थना, श्रद्धा, समर्पण—बाह्य नही आन्तरिक घटनायें ४८
२७. आनन्द का राज—न चाह सुख की, न भय दुख का ४९
२८ शब्दो की यात्रा मे सत्य की मृत्यु ५१
२९. जीवन है—दुर्लभ अवसर ५२
३० एकमात्र सम्पत्ति—परमात्म—श्रद्धा ५३
३१ प्रकाश—किरण से सूर्य की ओर ५४
३२ सुवास—आन्तरिक निकटता की ५५
३३ ध्यान की सरलता—नि संशय, निर्णायक व सकल्पवान चित्त के लिये ५६
३४. अदृश्य, अरूप, निराकार की खोज ५७
३५. आनन्दमग्न भाव से नाचती, गाती, निर्भार चेतना का ही ध्यान मे प्रवेश ५८
३६ शून्य, शान्त व मौन मे—वर्षा अनुकम्पा की ५९
३७. चमत्कार—'न-होने' पर भी 'होने' का ६०
३८. असार्थक की अग्नि-परीक्षा ६१
३९ श्रद्धा के दुर्लभ अकुर ६२
४०. ध्यान में प्रभु—इच्छा का उद्घाटन ६३
४१. प्रतीक्षा मे ही राज है परम ६४
४२ स्वय को तैयार करना—श्रद्धा से, शान्ति से, सकल्प से ६५
४३ अभिशाप में भी वरदान खोजो ६६
४४ अवलोकन—वृत्तियो की उत्पत्ति, विकास व विसर्जन का ६७
४५ सिद्धान्त—क्रान्ति का अन्त है ६८
४६. प्रतिक्रियावादी तथाकथित क्रान्तिकारी ६९

४७ सत्ता सदा ही क्रान्ति विरोधी है ७०
४८. ध्यान है—द्रष्टा, अकर्ता, अभोक्ता रह जाना ७१
४९. समग्र जिज्ञासा में प्रश्न का गिर जाना ७२
५० खोना ही 'उसे' खोजने की विधि है ७३
५१ धैर्य पूर्वक पोषण—क्रान्ति के गर्भाधान का ७४
५२. आत्म-विश्वास से खटखटाओ—प्रभु के द्वार को ७५
५३. अनजाना समर्पण ७६
५४ तुम्हारी समस्त सम्भावनाएँ मेरे समक्ष साकार हैं ७७
५५ सूक्ष्म और अदृश्य कार्य ७८
५६ प्रभु-मन्दिर की झलकें—ध्यान के द्वार पर ७९
५७ अनुभूति मे बुद्धि के प्रयास बाधक ८०
५८ कामना दुख है, क्योंकि कामना दुष्पूर है ८१
५९ प्रभु-कृपा की अमृत वर्षा और हृदय का उल्टा पात्र ८२
६०. जन्मो का पुराना—विस्मृत परिचय ८३
६१ आनन्द के आसुओ से परिचय ८४
६२ प्रभु-प्रेम को पागल मानने वाले लोगो से ८५
६३ हृदय है अन्तर्द्वार—प्रभु मन्दिर का ८६
६४ पात्रता का बोध—सबमे बडी अपात्रता ८७
६५. प्रमाद है भ्रूण-हत्या—विराट सम्भावनाओ की ८८
६६ चाह और अपेक्षा है जननी दुख की ८९
६७ रूपान्तरण के पूर्व की कसौटियाँ ९०
६८ ज्ञानी का शरीर भी मन्दिर हो जाता है ९१
६९. भेद है अज्ञान मे ९२
७० जीवन सत्य की ओर केवल मौन इशारे सम्भव ९३
७१ स्वय रूपान्तरण से गुजर कर ही समझ सकोगी ९४
७२ ज्ञान की गति है—अनूठी, सूक्ष्म और बेबूझ ९५
७३. शुभ आशीषो की शीतल छाया मे ९७
७४. ऊर्जा-जागरण से देह-शून्यता ९८
७५ सन्यास है—मन से मनातीत मे यात्रा ९९
७६ ध्यान—रूपान्तरण की विधायक खोज १००
७७. द्वन्द्व अज्ञान में ही है १०१
७८. काम-ऊर्जा का रूपान्तरण—सभोग मे साक्षीत्व से १०२
७९ आत्म-सृजन का श्रम करो १०३

८०. मन का भिखमगापन १०४
८१. स्वय का मिटना ही एक-मात्र तप है १०५
८२ वही दे सकते है—जो कि हम हैं १०६
८३ स्वर्ग और नर्क—एक ही तथ्य के दो छोर १०७
८४ अधैर्य से साधना में विलम्ब १०८
८५. नासमझदारो की समझ १०९
८६ आदमी ऐसा ही जीता है—तिरछा-तिरछा १११
८७ समग्रता से किया गया कोई भी कर्म अतिक्रमण बन जाता है ११२
८८. चाह से मुक्ति ही मोक्ष है ११३
८९ अन्तर-अभीप्सा ही निर्णायक है ११४
९०. सत्य की खोज लम्बी यात्रा, अशेष यात्री ११५
९१ अज्ञात को ज्ञान से समझने की असफल चेष्टा ११६
९२ हर पल जीता हू पूरा ११७
९३. जिन्दगी तर्क और गणित से बहुत अधिक है ११९
९४ जीवन की धन्यता है—अभिव्यक्ति म—स्वय की, स्व-धर्म की १२०
९५ सम-चित्त मे अद्वैत स्वरूप का बोध १२२
९६ सकल्प पूर्ण हुआ कि शून्य हुआ १२४
९७ साक्षी की प्रत्यभिज्ञा ही ध्यान है १२५
९८ साधन के मार्ग पर शत्रु भी मित्र ह १२६
९९ शान्त साक्षी-भाव मे ही डूब १२७
१०० आदमी की कुशलता—वरदानो को भी अभिशाप में बदलने की १२८
१०१ गहरा खेल शब्दो का १३०
१०२ पवित्र प्रार्थना—आँसुओ में नहाई १३२
१०३ पीडा को उत्सव बना लेने की कला १३३
१०४. वही है, वही है—सब ओर वही है १३४
१०५. सकल्प के पख—साधना मे उडान १३५
१०६. मुझसे मिलने का निकटतम द्वार—गहरा ध्यान १३६
१०७ अन्त सन्यास का सकल्प १३७
१०८. क्रोध के दर्शन से क्रोध की ऊर्जा का रूपान्तरण १३८
१०९ स्वरहीन सगीत मे डूबो १३९
११० समष्टि को बाँट दिया ध्यान ही समाधि बन जाता है १४०
१११ प्रभु द्वार पर हुई देर भी शुभ है १४१
११२ समझ (Understanding) ही मुक्ति है १४२

११३ सन्यास—रूपान्तरण की कमियाँ १४३
११४. उसका होना ही उसका ज्ञान भी है १४४
११५ जागे बिना सत्य से परिचय नही १४५
११६ साधना को तो सिद्धि तक पहुँचाना ही है १४६
११७ सदा स्मरण रखें—जीवन है एक खेल १४७
११८. साहस—अज्ञात में छलांग का १४८
११९ जिन खोजा तिन पाइयाँ १४९
१२०. अथक श्रम—और परीक्षा धैर्य की १५०
१२१ जीवन को उत्सव बना लेने की कला सन्यास है १५१
१२२ प्रभु-पथ से लौटना नही है १५२
१२३ स्वय को खोकर ही पा सकोगे सर्व को १५३
१२४ शून्य मे नृत्य और स्वरहीन सगीत १५४
१२५ 'न-करना' है करने की अन्तिम अवस्था १५५
१२६ अलकार की सीमा १५६
१२७ स्वय को समझो १५७
१२८ एक-मात्र यात्रा—अन्तम् की १५८
१२९ पर करो—कुछ तो करो १५९
१३० पहले समझो ही १६०
१३१ अति सूक्ष्म हैं—अहकार के रास्ते १६१
१३२ अपनी चिन्ता पर्याप्त है १६२
१३३ फूल, काँटे और साधना १६३
१३४ जीवन है एक चुनौती १६४
१३५ छलाग—बाहर—शरीर के, समाज के, समय के १६५
१३६ स्वय की खोज ही सन्यास है १६६
१३७ पागल होने की विधि है यह—लेकिन प्रज्ञा में १६७
१३८ प्रभु-प्रकाश की पहली किरण १६८
१३९ अस्वस्थता को भी अवसर बना लो १६९
१४०. दिन-रात की धूप-छाँव स्वय को भूल मत जाना १७०
१४१ नियति का बोध परम आनद है १७१
१४२ स्वनिर्मित कारागृहो में कैद आदमी १७२
१४३ समय रहते जाग जाना आवश्यक है १७३
१४४. अमूर्च्छा का आक्रमण—मूर्च्छा पर १७४
१४५ कुछ भी हो—ध्यान को नही रोकना है १७५

१४६ देखो स्थिति और हो जाने दो समर्पण १७६
१४७ नाचो-गाओ और प्रभु धुन में डूबो १७७
१४८. आनंद है महामंत्र १७८
१४९. जीवन नृत्य है १७९
१५० पद घुंघरु बांध १८०

•

पद घुँघरु बाँध

भगवान् श्री रजनीश द्वारा

विभिन्न साधकों एवं प्रेमीजनों को लिखे गये १५० अमृत-पत्रों का संकलन

१/अहं अज्ञान है—प्रेम ज्ञान है

प्रिय चदना,

प्रेम। पत्र मिला है। हृदय जब तक प्रेम से अंकुरित न हो, तब तक एक रिक्तता और अभाव का अनुभव होता है। प्रेम के अतिरिक्त आत्मा की पूर्णता की अनुभूति और किसी द्वार से नही होती है। प्रेम के अभाव मे आत्मा में क्या है? अह और केवल अहं 'मैं' और केवल 'मैं'। यह 'मैं' एकदम मिथ्या है। छाया की भी वह छाया है। उसकी उपस्थिति ही रिक्तता है। वह है, यही अभाव है। अह की छाया प्रेम के प्रकाश में तिरोहित हो जाती है। और तब जो शेष रह जाता है, वही ब्रह्म है। प्रेम साधना है, ब्रह्म सिद्धि है।

मैं कहता हूँ प्रेम ज्ञान है। और अज्ञान क्या है? अहं अज्ञान है। और जब अह ही ज्ञान की खोज करने लगता है तो वैसा ज्ञान महा अज्ञान बन जाता है। अह की खोज से पांडित्य आता है। पाडित्य सूक्ष्मतम परिग्रह है। प्रज्ञा का जन्म अहं से नहीं, प्रेम से होता है। इसलिए ही अहकार प्रेम से सदा भय-भीत रहता है। वह राग कर सकता है, विराग कर सकता है। लेकिन, प्रेम? नही। प्रेम तो उसकी मृत्यु है।

प्रेम न राग है न विराग। प्रेम परम वीतरागता है।

प्रेम सम्बन्ध नही है। प्रेम है स्वय की स्थिति। राग किसी से होता है। विराग भी किसी से होता है। प्रेम स्वय में होता है। वह है सहज स्फुरणा—अकारण और अप्रेरित। और इसीलिए राग भी बांधता है, विराग भी बाधता है। प्रेम मुक्त करता है। प्रेम मुक्ति है।

●

धर्म क्या है?

सगठना या साधना?

धर्म सगठित होते ही धर्म नही रह जाता है। सगठन के स्वार्थों की दिशा धर्म की दिशा से भिन्न ही नही, विपरीत भी है। इसलिए धर्म के नाम पर खडे सप्रदाय वस्तुत धर्म की हत्या में ही सलग्न रहते हैं। धर्म है वैयक्तिक चेतना-जागरण। संप्रदाय है, भीड का शोषण। धर्म के लिए चेतना का भीड से, समूह से स्वतन्त्र होना आवश्यक है, जबकि सप्रदाय चेतना की ऐसी स्वतत्रता का शत्रु ही हो सकता है। संप्रदायो की दासता मे केवल वे ही हो सकते हैं जो कि स्वय के मित्र नही है। परतत्रता शत्रु है। स्वतत्रता ही मित्र है।

[प्रति साध्वी चदना]

२/प्यास की पीड़ा ही अन्ततः प्राप्ति बन जाता है

प्रिय चदना,

प्रेम । तुम्हारा पत्र पाकर आनदित हूँ । मैंने पूना पहुँचकर तुम्हारी खोज की थी फिर ज्ञात हुआ कि अभी वहा नही पहुँच सकी हो । सभवत पर्यूषण मे वहा आवू तब मिलना हो सकेगा । तुम्हारी स्मृति तो मुझे सदा बनी रहती है । सत्य के अनुसधान की इतनी अभीप्सा बहुत ही कम व्यक्तियो मे होती है । और तुम्हारी हृदय की धडकनो में तो बस सत्य की ही प्यास है । **यह प्यास बहुत शुभ है क्योंकि अतत उसकी पीडा ही प्राप्ति बन जाती है ।**

भूमि मे दबा कोई बीज जिस भाति अकुरित होने को व्याकुल होता है, जब प्राण परमात्मा के लिए भी उसी भाति आकुल हो उठते है तो फिर कोई बाधा बाधा नही रह जाती है । **हममें प्यास की तीव्रता न होना ही बाधा है ।** वह प्यास तुममे है, इसलिए तुम्हारे प्रति मैं बहुत आशा से भरा हुआ हूँ । स्मरण रहे कि **मेरा सारा प्रेम और सारी प्रार्थनायें उनके लिए हैं जो कि परमात्मा के प्यासे हैं,** और परमात्मा के लिए पागल हैं । उन थोडे से पागलो मे मै तुम्हारी भी गणना करता हूँ ।

वहा सबको मेरे प्रणाम ।

६-७-१९६६

[प्रति साध्वी चदना]

३/मृत परम्पराओं व दासताओं से मुक्ति

प्रिय चंदना,

मैं बाहर था। लौटा हूँ तो तुम्हारा पत्र मिला है। उसे पाकर आनंदित हू। तुम्हारी छटपटाहट को अनुभव करता हूँ। जिसके भी हृदय में सत्य की अभीप्सा जाग जाती है, उसे सत्य के बिना एक भी क्षण जीना कठिन हो जाता है। उसकी श्वास-श्वास व्याकुल हो उठती है और उसके प्राण अहर्निश ही परम सत्य के लिए आतुर रहने लगते हैं। इसे ही मै उपवास कहता हूँ। और, यही व्याकुलता उस सकट तक ले जाती है, जहाँ कि जीवन आमूलत रूपातरित हो जाता है।

सत्य की उपलब्धि के पूर्व एक बडे सकट और सक्रांति से गुजरना पडता है। वही उसकी प्राप्ति का मूल्य ह। सत्य तो बहुत लोग चाहते हैं, लेकिन मूल्य चुकाने कोई बिरला ही राजी होता है। मैं जानता हूँ कि उस मूल्य को भी चुकाने की तुम्हारी तैयारी है और इसलिए ही बहुत आशा से भरा हुआ हूँ।

बीज तैयार है। बोने भर की देर है और अकुर निकलने शुरू हो जायेंगे। वह बीज ही अकुर बनने को तैयार भी हो रहा है।

मनुष्य के मन पर हजारो वर्षों की मृत परपराओ का बोझ है। यह बोझ उसे मुक्त नही होने देता। यह दासता बहुत गहरी है। इसके कारण ही वह उस स्वतत्रता को अनुभव नही कर पाता है जो कि सत्य का द्वार है।

परमात्मा मे जन्म के पूर्व सब भाति की दासता मे मुक्त होना आवश्यक है, क्योंकि केवल मुक्त चित्त ही मुक्ति की अनुभूति करने मे समर्थ हो सकता है।

वहा सबको मेरा प्रेम कहना।

तुम्हारे लिए भी बहुत बहुत प्रेम।

१५-७-१९६६

[प्रति साध्वी चंदना]

४/सत्य के पथ पर अडिग और अदम्य साहस आवश्यक

प्रिय चन्दना,

मैं तुम्हारे मन में प्रकट हो रही उन्मुक्तता से कितना आनंदित हूँ---यह कैसे कहूँ? किसी भी चित्त की कड़ियां टूटते देखकर मैं आह्लादित होता हूँ, फिर तुम्हे तो मैंने सदा ही अपना जाना है। तुम्हारे गिरते बन्धन भी मेरे हैं और तुम्हारी आत्मा को मिलता आकाश भी मेरा ही है। परमात्मा से एक ही प्रार्थना करता हूँ कि वह तुम्हे बल दे और सत्य और स्वतंत्रता के मार्ग पर ले चले।

स्वतंत्रता से सत्य का जन्म होता है और सत्य से स्वतंत्रता आती है।

साहस---अदम्य साहस और दुस्साहस के बिना सत्य के पथ पर चलना असंभव है।

सत्य के अनुसंधान में सदा स्वयं के अंतःकरण पर ही दृष्टि रखनी आवश्यक है।

समाज विचारणीय नही है। भीतर जो स्पष्टतया मार्ग प्रतीत हो, वही मार्ग है।

किसी भी मूल्य पर उससे डिगना मंगलदायी नही है।

स्मरण रहे कि व्यक्ति अन्ततः स्वयं को छोड़कर और किसी के प्रति उत्तरदायी नही है।

मैं तुम्हारे दूसरे पत्र की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

मेरा प्रेम तुम्हारे लिये प्रार्थना बनकर बह रहा है।

प्रेम प्रार्थना है, क्योंकि उससे पवित्र और कुछ भी नही है।

वहां सबको प्रणाम।

१७-८-१९६६

पुनश्च

पत्र में तुमने लिखा है कि तुम सब बातें स्पष्ट कहना चाहती हो। कहो मुझसे नही तो किससे कह सकोगी।

विचार परिवर्तन के आस-पास चिंता है, यह भी लिखा है।

यह स्वाभाविक है। लेकिन उससे स्वयं चिंतित मत होना। वरन् प्रसन्न होना। उसे शुभ मानना। अस्पताल में जब कोई व्यक्ति स्वस्थ होने लगता है, तो दूसरे अस्वस्थ व्यक्ति उसका स्वागत नही कर पाते है। न ही कारागृह मे छूटते कैदी से अन्य कैदियो को आनद होता है। फिर विचार की रुग्णता तो और भी गहरी है और विचार के कारागृह की दीवारें तो और भी मजबूत होती है। दासो ने स्वतत्र-आत्म व्यक्तियो को कभी भी पसद नही किया है। उसकी उपस्थिति मात्र उनके लिए अपमान और आत्मग्लानि बन जाती है। छोटे व्यक्तियो के बीच इसीलिए, बडा होना बडा जोखिम का काम है।

मेरे लिए भी तुमने चिंता की है। उसमे झलक आये प्रेम को मैंने अनुग्रह से स्वीकार किया है। लेकिन, मेरे सम्बन्ध में कोई कैसी धारणा बनाता है, इसकी फिक्र मैंने ही कभी नही की तो तुम तो करना ही नही। मैं औरों से मुक्त हूँ। उनका आदर-अनादर, उनकी प्रशसा-निंदा कुछ भी मुझ तक नहीं पहुँचती है। और इसीलिए तो आनदित हूँ। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई भी मेरे लिए नहीं है।

और विश्वविद्यालय छूट गया है। ताकि बृहत्तर विश्व का हो सकूँ।
सच ही हो सकूँ—इसके लिए कामना करना। प्रेम। बहुत प्रेम।

५/नये जन्म की प्रसव-पीड़ा-रिक्तता व अभाव का साक्षात्

प्रिय वदना,

प्रेम । पत्र मिला है । तुम्हारे हृदय मे जिज्ञासा की नयी-नयी तरगे उठते देखकर मैं आनदित हूँ । जीवन जडता नही है । जीवन तो अविच्छिन्न प्रवाह है । लेकिन चित्त जड है । वह अतीत और मृत है । उसके कारण ही जीवन मे भी गतिरोध आ जाते है और वही बांध बनकर जीवन सरिता को छोटे-छोटे डबरो मे बदल देता है । चित्त की इन दीवारो को रोज ढहाते चलना जरूरी है । **स्मृति और संस्कार के मृत अवरोध-तत्व रोज जलाते चलना आवश्यक है** । उनकी राख मे से ही, जीवन की अखड धारा उपलब्ध होती है । उसकी उपलब्धि ही आत्मा है । उसकी उपलब्धि ही आनद है । और उसे पाकर स्वय न हो जाना ही मोक्ष है ।

अभाव का, किसी गहरी रिक्तता का तुम्हे अनुभव होता है, यह शुभ है, क्योकि **अभाव की यह पीडा ही नये जीवन के जन्म की प्रसव-पीडा बनती है** । अभागे है वे जो अपनी क्षुद्र व्यस्तताओ मे इस अभाव को ढांक लेते है क्योकि इस भांति वे स्वय की आत्मा को ही नही जान पाते है । और अधिकतर जीवन अभाव को ढांकने मे व्यर्थ व्यय होता है । **किसी भी दौड मे किसी भी तृष्णा मे इस अभाव को ढांका जा सकता है** । धन, पद, पुण्य या मोक्ष—कुछ भी हो स्वय की रिक्तता को ढांक देती है । ससार या सन्यास कोई भी वासना उस पर आवरण बन जाती है । और स्मरण रहे कि आवरणो मे अभाव मिटता नही, मात्र भूला ही रहता है । हर मृत्यु उसे पुन उघाड देती है और तब फिर उसे ढांकने के लिये नये चक्र का प्रारभ हो जाता है । इसीलिये तो मृत्यु का भय होता है, क्योकि जिस सत्य को व्यक्ति ने जीवन भर ढांका मृत्यु उसका ही अन्यत कष्टदायी साक्षात् बन जाती है । इस सत्य को मृत्यु के पूर्व ही जो स्वय ही जान लेता है, वह सौभाग्यशाली है । **अभाव से भागना नही, वह मित्र है । उसमें जीना** । उसमे जीने से ही सरलता और अहशून्यता आती है । और, शून्यता सत्य के लिये द्वार है । अभाव मे जीने को ही मैं ध्यान कहता हूँ ।

प्रेम की अभिव्यक्ति कैसो हो, यह तुमने पूछा है । अहकार मे जो जीता है, उससे घृणा की अभिव्यक्ति होती है । अभाव मे जो जीता है, उसकी श्वास-श्वास प्रेम बन जाती है ।

'मैं' नहीं हू, यह जान लेना ही प्रेम है ।

यह तुमने क्या लिखा है "मैं प्रसन्न रहना जानती हूँ। मैं प्रसन्न रहने का प्रयास करती हूँ।" नही! नही! वह प्रसन्नता शुभ नहीं है, जो कि प्रयास से आती है। मै तो तुम्हारे हृदय मे उस आनद का जन्म चाहता हूँ, जो अनायास ही बहता है। स्व-स्फूर्त ही हृदय की वीणा पर जो सगीत बजने लगता है, उसके अतिरिक्त शेष सब सगीत धोखा है। आनद को खोजो—सहज आनद को। अभ्यासजन्य प्रसन्नता से तृप्त और तुष्ट मत हो जाना। ऐसी स्थितियाँ अतत आत्मघात सिद्ध होती है।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम।

और प्रेम। परमात्मा प्रेम व प्रकाश दे यही प्रार्थना है।

१०-९-१९६६

६/मन के घास-फूसों की सफाई

प्रिय चंदना,

प्रेम । तुम्हारा पत्र मिले देर हो गयी है । रोज ही लिखने की सोचता हूँ और नही लिख पाता हूँ । बीच मे बहुत दिन तो प्रवास मे था । और लौटा हूँ तो यहाँ बहुत व्यस्तता है ।

निश्चय ही तुम प्रत्युत्तर की बाट जोहती होगी । मै प्रतीक्षा करते तुम्हार हृदय को देख पा रहा हूँ ।

किन्तु प्रतीक्षा का भी अपना आनद है ।

सत्य के लिए तो प्रतीक्षा ही प्रार्थना है ।

मै उस दिन तुम्हे मिलकर बहुत आनदित हुआ । बीती बार से बहुत अतर पाया ।

तुम जो खोज रही हो, उसे अवश्य ही पाओगी । पूर्व मे सूर्योदय के लक्षण स्पष्ट है ।

लेकिन जो मैं कह आया हूँ, उसका ध्यान रखना । **परमात्मा के बीज बोना है तो मन की भूमि सब भाँति के घास-फूस से मुक्त होनी चाहिए ।** शब्द और सिद्धातो से चित्त जितना स्वतत्र होता है, सत्य के लिये उसके द्वार उतने ही उन्मुख हो जाते है ।

जिज्ञासा परतत्र न हो तो परमात्मा से निकट और कुछ भी नही है । और मन पूर्णतया मौन हो तो वह तो मौजूद ही है ।

सबको प्रणाम ।

१०-१०-१९६६

[प्रति साध्वी चदना]

७/धन का अन्धापन

प्यारी चदना,

जिस मित्र ने मेरा साहित्य पढना तू छोड सके तो हजार रुपया दान करने को कहा है उनसे कहना कि हजार रुपये तो बहुत कम है आप थोडी और हिम्मत बढ़ावें तो परीक्षा हो सके कि आप कितना दान कर सकते है और चदना कितने दान पर लात मार सकती है।

धन जिनके पास है, उन्हे धन के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नही पडता है। प्रेम के प्रति तो वे बिलकुल ही अधे होते हैं। और इसीलिए परमात्मा का द्वार भी उनके लिए बद हो जाता है।

क्राइस्ट ने व्यर्थ ही तो नही कहा है "सुई के छेद से ऊँट भला निकल सके किंतु धनपति प्रभु के राज्य में प्रवेश नही पा सकता है।"

और 'त्याग के धनियो' की कथा भी भिन्न नही है। त्याग के सिक्को के सग्रह से वे भी वही करना चाहते है जो कि चादी के सिक्को के मालिको की आकाक्षा है लेकिन वे भी प्रभु के राज्य मे प्रविष्ट नही हो सकते है। वहाँ तो उनका ही प्रवेश है जो कि सब भाति निर्धन (POOR IN SPIRIT) हैं।

और यह जानकर मैं आनदित होता हू कि तू ऐसी ही निर्धन हुई जाती है।

७-१०-१९६७

[प्रति साध्वी चदना]

८/विश्वास-अविश्वास के द्वन्द्व से शून्य मन

प्यारी चदना,

प्रेम । तेरा पत्र मिला है । तूने पूछा है "विश्वास के अभाव मे जीवन के सामान्य व्यवहार भी नही हो सकते है तो आध्यात्मिक प्रगति विश्वास के बिना कैसे सभव है ?"

पहली बात ससार का सामान्य व्यवहार उतना ही असत्य है जितना कि विश्वास । **सत्य के लिए नही, असत्य के लिए ही विश्वास की अपेक्षा होती है । सत्य तो स्वय सिद्ध है ।** उसके होने के लिए किसी अन्य सहारे की आवश्यकता नही है ।

दूसरी बात आध्यात्मिक जीवन की यात्रा ससार व्यवहार से बिलकुल विपरीत है । वह आयाम ही मूलत भिन्न है । इसलिए **एक का नियम दूसरे के लिए अनियम है ।** निद्रा और जागृति मे जैसा भेद है, वैसा ही भेद वहाँ है । **ससार के नियमो के अनुसरण से नहीं, वरन् उनसे मुक्त होकर आध्यात्मिक प्रगति होती है ।**

तीसरी बात विश्वास-अविश्वास विचार-तल की घटनाये है । विचार से ज्यादा उनकी गहराई न है, न हो सकती है । और **आंतरिक में प्रवेश होता है निर्विचार से ।** इस लिए विचार को छोडे बिना कोई मार्ग नही है ।

चौथी बात मैं जब विश्वास छोडने को कहता हूँ तो इसका अर्थ यह नही है कि तब मै अविश्वास को पकडने को कहता हूँ । अविश्वास भी विरोधी विश्वास है । उसे भी छोडना है । तभी चित्त मुक्त होता है । और **मुक्त चित्त ही आध्यात्मिक जीवन का द्वार है ।**

पाँचवी बात विश्वास अविश्वास का अभाव नही, अविश्वास का दमन मात्र है । विश्वास के पाछे इस लिए हमेशा अविश्वास मौजूद होता है । उसे ही दबाने और छिपाने को तो विश्वास को पकडा और पोषा जाता है । और इस भाँति चेतना द्वद्व से भर जाती है । यह द्वद्व ही तनाव है । यह द्वद्व ही अशाति है । और **आध्यात्मिक प्रगति के लिए चाहिये निर्द्वन्द्व भाव-दशा ।** इसलिए मैं विश्वास-अविश्वास के द्वद्व को छोडने को कहता हूँ । और यह स्मरण रहे कि चित्त के किसी भी द्वद्व मे एक को नही छोडा जा सकता है । वस्तुत तो एक को छोडने और

दूसरे को बचाने की चेष्टा से ही तो द्वंद्व पैदा होता है। या तो दोनो ही छोड़ते पकड़ते हैं या दोनो ही बच जाते है। क्योंकि वे दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू है। विश्वास-अविश्वास, राग-विराग आदि ऐसे ही द्वन्द्व है।

और तूने यह भी पूछा है कि स्व-ज्ञान को प्रकट करने की प्रक्रिया क्या है?
मन को समस्त क्रियाओं से मुक्त और शून्य कर लेना।
शून्य मन पूर्ण की अभिव्यक्ति की भूमिका है।
वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहना।

१०-८-१९६८

[प्रति साध्वी चंदना]

९/साधुता—कांटों मे रहकर फूल बने रहने की क्षमता

प्यारी चदना,

प्रेम । तेरा पत्र मिला । यह जानकर बहुत आनंदित हूँ कि तू **कांटों के बीच में रहकर भी फूल बने रहने की क्षमता** नही खो रही है । **मैं इसे ही साधुता का एकमात्र लक्षण कहता हू ।** लेकिन जो वस्त्रो मे ही साधुता जानते है, वे शायद इसे पहचान भी न सके । पर उनकी पहचान की चिन्ता भी नही करनी है । उस पहचान का मूल्य दो कौडी भी नही है । दूसरो की पहचान, स्वीकृति-अस्वीकृति का नही, **मूल्य है स्वय की अपनी पहचान का ।** उस दिशा मे तू निरन्तर ऊपर उठती रहे, यही मेरे प्राणो की कामना है । इसलिए किसी के प्रति भूलकर भी कटु मत होना । वैसी कटुता उन्हे व्यर्थ ही मूल्य देना है । हाँ, उनकी कटुता के मध्य सदा मधुर जरूर बनी रहना । वैसी मधुरता को अपना स्वभाव बना । वह किसी के प्रति नही, बस स्वय का वैसा होना बने ।

वहा सबको मेरे प्रणाम ।

१०–९–१९६८

[प्रति : साध्वी चदना]

१०/समय के साथ नया होना ही जीवन है

प्यारी चंदना,

प्रेम। तेरा पत्र मिला है।

नये वर्ष की शुभ कामनायें भी।

समय तो रोज नया होता है।

प्रतिपल नया है।

लेकिन आदमी पुराना ही बना रहता है।

नही—आदमी नया होता ही नही है।

समय नया होता जाता है और आदमी पुराना होता जाता है।

यही मृत्यु है।

समय के साथ नया होना ही जीवन है।

समय और स्वय मे जरा भी फासला नही चाहिये।

फिर ही उसका पता चलता है जो जीवन है—जो है।

और आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि वह जीवन समय के अतीत है।

समय के साथ वर्तमान के साथ पूर्ण एकता सधते ही चेतना समय के अतीत हो जाती है।

नये वर्ष मे तेरे लिए ऐसी ही अनुभूति की कामना करता हूँ।

आर्या, सुमति को मेरे प्रमाण।

और सबको भी।

९-१-१९६९

[प्रति : साध्वी चदना]

११/'जो है' उसी का नाम ईश्वर है

मेरे प्रिय,

प्रेम। "जो है" उसी का नाम ईश्वर है। जो उसका सहारा लेते हैं, वे भ्रम मे है। क्योकि वही है और हम नही है। इस लिए सहारा किसका और किसको?

द्वैत की भाषा ही भ्रम है।

और रह गये ज्ञानी?

सो ज्ञानियो से ज्यादा अज्ञानी और कोई नही है।

ज्ञान का भाव भी अज्ञान का ही रूप है।

वह अज्ञान की अतिम आत्म-रक्षा है।

वह भी जाये तो ही अज्ञान जाता है।

और फिर जो शेष रह जाता है, वह क्या है?

ज्ञान?

नही।

अज्ञान?

नही।

न वह ज्ञान है, न अज्ञान, क्योकि न वहाँ ज्ञाता है न ज्ञेय।

फिर वह क्या है?

वह 'क्या' नही है—वह तो बस 'है'।

और वही ईश्वर है।

"ईश्वर है," ऐसा कहना पुनरुक्ति ही है।

क्योकि ईश्वर का अर्थ ही ह, वह जो "ह।"

पूर्ण ही लीला है।

पूर्ण हुये कि फिर जो है, बस लीला ही है।

५-३-१९६९

[प्रति श्री पुष्कर गोकाणी, द्वारका, गुजरात]

१२/असुरक्षा का स्रोत—सुरक्षा की अति आतुरता

प्यारी मौनू,

प्रेम। जीवन को बचाने में ही लोग जीवन को गवाँ देते हैं।

सुरक्षा की अति आतुरता ही असुरक्षा बन जाती है।

एक सम्राट स्वय ही ज्योतिष का ज्ञाता था।

उसने जाना कि शीघ्र ही एक निश्चित तिथि पर एक विशेष घडी मे उसके लिए कोई बडा दुर्भाग्य प्रतीक्षा कर रहा है।

उसने शीघ्र ही मजबूत चट्टानो से एक छोटा-सा कक्ष निर्मित करवाया।

कक्ष मे एक ही द्वार था, वह भी उसने दुर्भाग्य-आगमन के निश्चित दिन पर स्वय भीतर हो चट्टानो से ही भरवा दिया।

बाहर उस कक्ष के तोपे लगी थी और विशाल सेना का पहरा था।

फिर जब निश्चित घडी निकट आने लगी तो सम्राट ने देखा कि एक छोटे छेद से सूर्य का प्रकाश भीतर आ रहा है।

उसने उसे भी मिट्टी से भरकर बद कर दिया।

दुर्भाग्य के लिए इतना सा मार्ग भी तो छोडना खतरनाक है न!

लेकिन, उस सम्राट को पता नही था कि **जहाँ दुर्भाग्य नहीं पहुँचता है, वहाँ सौभाग्य का मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता है।**

और जहाँ मृत्यु की गति नही है, वहाँ जीवन का भी कोई उपाय नहीं है।

दुर्भाग्य की घडी बीत गयी।

फिर दुर्भाग्य का दिवस भी बीत गया।

राजधानी मे खुशियाँ मनायी जाने लगी।

राजमहल स्वागत-सगीत मे गूजने लगा।

लेकिन, जब उस सुरक्षा-कक्ष का द्वार पुन तोडा गया तो सम्राट वहाँ नही था, बस केवल उसकी मृत देह ही थी।

५–१–१९७१

[प्रति मा योग क्रांति, जबलपुर]

१३/जीओ पल-पल न टालो कल पर

प्यारी मौनू,

प्रेम। जीवन को कल के लिए स्थगित करने से और कोई बडी भूल नही है।

क्योंकि, कल जीवन नहीं, मृत्यु है।

एक कृपण व्यक्ति ने सारा जीवन गँवाकर ३ लाख रुपये बचाये थे।

उसी आशा मे गँवाया था उसने भी जीवन जिस आशा मे कि सभी गँवाते है।

सोचा था उसने कि अत मे आनद मनाऊँगा!

आह! मनुष्य-मनुष्य भी कैसा एक-सा ही सोचते है।

या कि सोचते ही नहीं इसलिए ही एक-सा सोचते हुए प्रतीत होते हैं?

पर जिस रात उस कृपण व्यक्ति ने तय किया कि अब कल से कमाई बद करता हूँ और आनद शुरू—उसी रात मौत ने उसका द्वार खटखटाया!

यद्यपि अभी भी वह कल पर ही टाल रहा था फिर भी मौत आ गई!

कृपण ने बहुत हाथ पैर जोडे और प्रार्थना की कि कल भर तो और जी लेने दो लेकिन मौत ने उसकी एक न सुनी!

उल्टे मौत ने उससे कहा "**जिसे जीना है, वह आज जीता है—जीने के लिए आज काफी है, हाँ, जिसे मरना ही है बस उसके लिए आज काफी नहीं है—वह सदा कल के लिए और कल में ही जीता है।**"

कृपण ने कोई राह न देख अपनी सारी सपत्ति मौत के चरणो मे रख दी और कहा, यह है मेरा सारा जीवन—इसे ले लो और मुझे बस एक दिन जीने के लिए और दे दो?

लेकिन, मौत राजी न हुई!

जीवन को द्वार से हटाया जा सकता है, लेकिन मौत को नहीं।

जीवन को मिटाया जा सकता है, लेकिन मौत को नहीं।

तब कृपण ने कहा कि मुझे बस इतना ही समय दे दो कि मैं एक छोटा-सा सदेश उनके लिए लिख सकूँ जो कि मेरी ही राह पर मौत के मुँह मे जा रहे है।

मौत ने कहा "**यह तुम कर सकते हो, क्योंकि तुम्हारे सदेश को कोई भी पढ़ेगा नहीं और यदि कोई पढ़ेगा भी तो समझेगा नहीं और यदि कोई समझा भी तो उस पर आचरण नहीं करेगा।**"

फिर भी कृपण ने अपने खून से लिखा "मनुष्यो !, जीवन अमूल्य है। एक-एक पल अमूल्य है। मैं ३ लाख रुपये देकर भी एक घंटा नहीं खरीद पाया हूँ। जीवन को जी लो जब समय है और कल पर जीना कभी न टालो—क्योंकि जीने को टालते-टालते मेरे हाथ में सिवाय मृत्यु के और कुछ भी नहीं लगी है।"

इस सदेश को लिखे गये अनगिनत वर्ष बीत गये हैं, लेकिन न तो उसे कोई पढता ही है, न कोई समझता ही है और तब उस पर आचरण करने का तो सवाल ही नही उठता है।

७-१-१९७१

[प्रति मा योग क्रांति, जबलपुर]

१४/ज्ञान-सूत्र—"यह भी बीत जायेगा"

प्यारी मौनू,

प्रेम। जीवन मे छिपी है मृत्यु।

और मृत्यु मे पुन जीवन।

लेकिन, जीवन मे मृत्यु कहाँ दिखती है ?

और मृत्यु मे जीवन की पदध्वनि कहाँ सुनाई पडती है ?

यही अज्ञान है।

सुख मे छिपा है दु ख।

दु ख मे छिपा है सुख।

लेकिन यह स्मरण कहाँ रहता है ?

यही अज्ञान है।

एक सम्राट ने कभी देश के सभी बुद्धिमानो को एकत्रित करके बडी कठिनाई मे डाल दिया था।

क्योंकि उसने उनसे कहा था कि **मुझे एक ऐसा ज्ञान-सूत्र दो जिससे कि मैं सुख में उदास और दु ख में प्रफुल्लित हो सकूँ ?**

बुद्धिमान मुश्किल मे पडे।

वर्ष भर का समय मांगा।

लेकिन, वर्ष बीतने को आया और कोई हल हाथ न लगा।

शास्त्र खोजे।

चिंतन किया—विचार किया।

पर नही कोई किनारा दिखाई पडा।

फिर थक गये और तब एक वृद्ध फकीर के पास गये।

वह फकीर उनकी हालत देखकर हँसने लगा।

उसने कहा "नासमझो ! तुम खुद ही दुखी हो और प्रफुल्ल नही हो पा रहे हो तो तुम सम्राट को क्या और कैसे ऐसा ज्ञान-सूत्र दे सकोगे, जिसे पाकर कि सम्राट रात्रि मे सुबह और सुबह मे रात्रि का आगमन देख सके ?"

और फिर इस वृद्ध फकीर ने उन्हे एक अगूठी दी और कहा यह अगूठी सम्राट को जाकर दे दो।

उस अंगूठी पर ज्यादा नहीं बस चार ही शब्द लिखे थे "यह भी बीत जायेगा। (This, too, will pass.)"

और सम्राट उस अंगूठी पर लिखे सूत्र को पढ़कर हँसने लगा और फिर रोने लगा और फिर हँसने लगा और फिर रोने लगा।

क्योंकि, जब वह हंसा तो उसे याद आया "यह भी बीत जायेगा।"

और इसलिए वह रोने लगा।

लेकिन, जब रोया तो उसे याद आया : "यह भी बीत जायेगा।"

और इसलिए वह हँसने लगा।

१०-१-१९७१

[प्रति मा योग क्रांति, जबलपुर]

१५/प्रार्थना में शब्द नहीं—सुने जाते हैं भाव

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम ! प्रार्थना मे शब्द नही—सुने जाते है भाव ।

वह नही पहुँचता है प्रभु तक जो कि मुखर है—**वरन् वह पहुँचता है जो कि मौन है ।**

शब्दो की सतह के नीचे जो सरकता रहता है, उस पर ही ध्यान होना चाहिए ।

परिधि नहीं—स्वयं का केंद्र ही केवल परम अस्तित्व से संवाद करता है ।

अत्तार ने लिखा है कि किसी मस्जिद के सामने एक पागल आदमी पड़ा रहता था ।

मस्जिद मे प्रार्थनाये चलती तो भी वह कभी उनमे सम्मिलित नही होता था ।

लोग उससे सामूहिक प्रार्थना मे सम्मिलित होने को कहते भी तो वह हँसता और कहता "**तुम ? और प्रार्थना ? प्यारे ! किसे धोखा दे रहे हो ?**"

इसीलिए, लोग उसे पागल समझने लगे थे !

आह ! आदमी भी अपने बचाव के लिए क्या क्या नही करते हैं ?

फिर स्वय को पागल समझना कितना कठिन -और दूसरे को पागल समझना कितना आसान है !

यद्यपि जो स्वय को पागल समझ सके केवल वही पागल नही है ।

लेकिन, एक दिन किसी धार्मिक उत्सव पर लोग माने ही नही तो वह पागल भी प्रार्थना मे सम्मिलित हुआ ।

प्रार्थना शुरू हुई ।

मौलवी प्रार्थना करवाने लगा ।

लेकिन वह पागल प्रार्थना की जगह जोर-जोर से बैलो जैसी आवाज निकालने लगा !

लोगों ने समझ लिया कि पागल और कर भी क्या सकता है ?

पर प्रार्थना पूरी हो जाने पर उससे पूछा 'क्या तुम्हे परमात्मा में जरा

भी श्रद्धा नही ? यह कैसा अशोभन कार्य तुमने किया ? बैलो जैसी आवाज निकालने की यहाँ क्या आवश्यकता थी ?"

वह पागल हँसने लगा और बोला "परमात्मा मे यहाँ किसे प्रयोजन है ? और श्रद्धा यहाँ किसके हृदय मे है ? और प्रार्थना यहाँ कौन कर रहा था ? रही बैलो जैसी आवाज—सो जब मौलवी ने बैल खरीदना शुरू कर दिया तो मैं प्रत्युत्तर देने के सिवाय और क्या कर सकता था ?"

लोगों ने चकित हो मौलवी की तरफ देखा।

मौलवी ने सिर झुका लिया और कहा "मैं जब प्रार्थना करवा रहा था तब अपने खेत के सबध मे सोच रहा था और फिर बैलो की मुझे जरूरत है सो मैं बैलो को खरीदने निकल गया था, तभी मैं चौंका कि मस्जिद में बैलो जैसी आवाज कहाँ से आ रही है—लेकिन तब भी मैं समझ न सका और न हीं सचेत ही हो सका। मैं बिल्कुल पागल हूँ।"

वह पागल फिर हँसने लगा और बोला "इस गाँव मे कम से कम एक आदमी तो पागलपन के बाहर निकलने की स्थिति मे आ गया है।"

१४-१-१९७१

[प्रति स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

१६/धर्म अभिव्यक्ति की सतत रूपान्तरण प्रक्रिया

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम ! समय की सापेक्ष धारा मे निरपेक्ष (Absolute) सत्यो की घोषणा ही धर्म की मृत्यु का कारण बनी है ।

सत्य निरपेक्ष है ।

पर उसकी कोई भी अभिव्यक्ति निरपेक्ष नहीं हो सकती है ।

अभिव्यक्त होते ही सत्य भी सापेक्षिता (Relativity) के आयाम (Dimension) में प्रवेश कर जाता है ।

और जहाँ सापेक्षिता है, वहाँ परिवर्तन है—वहाँ प्रवाह है ।

क्योंकि वहाँ समय (Time) है ।

काश ! धर्मान्ध व्यक्ति इतना समझ सकें—तो फिर धम और विज्ञान मे कोई विरोध नही है ।

अल्बर्ट आइन्स्टीन के एक स्वागत समारभ मे जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा था "धर्म सदा सत्य है, जबकि विज्ञान सदा असत्य ।"

स्वभावत आइन्स्टीन चिन्ता मे पडा और फिर उसने पूछा "आपका अर्थ क्या है ?"

शॉ ने कहा "धर्म के ठेकेदार एक ही झूठ को सदा दुहराते रहते है—इसलिए धर्म सदा सत्य है । और उन ठेकेदारो के न्यस्त स्वार्थों के कारण कोई उस झूठ को झूठ भी सिद्ध नहीं कर पाता है । और विज्ञान सदा असत्य है क्योकि उसके सत्य प्रत्येक नयी शोध के साथ रूपातरित होते रहते हैं ।"

धर्माभिव्यक्तियाँ भी जब तक सतत रूपातरण से बचती रहेगी तब तक जीवित धर्म का अस्तित्व असभव है ।

मृत्यु ही रूपातरण के बाहर है ।

जीवन नही ।

जीवन तो रूपांतरण की प्रक्रिया का ही दूसरा नाम है ।

२५-१-१९७१

[प्रति स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

१७/ईर्ष्या के सूक्ष्म हैं यात्रा-पथ

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम। ईर्ष्या कुछ भी करा सकती है।

उसकी बेहोशी गहरी है।

और उसके यात्रा-पथ अति सूक्ष्म।

आस्कर वाइल्ड ने एक अद्भुत कहानी लिखी है

जीसस को सूली दे दी गयी थी।

अंधेरी रात ने पृथ्वी को घेर लिया था।

अरिमाथिया निवासी जोसेफ हाथ मे मशाल लेकर काम से घर के बाहर निकला था।

राह के किनारे उसने एक सुन्दर युवक को नग्न छाती पीटते और रोते देखा।

उसने अपने शरीर म काँटो से घाव बना लिये थे और माथे पर काँटो का एक ताज पहन रखा था।

जोसेफ ने दया के स्वर मे उस युवक से कहा "निश्चय ही मै तुम्हारे गहन दुख से चकित नही हूँ क्योकि जीसस एक सत्पुरुष था। (I do not wonder that your sorrow is so great, because He was a just man)"

किन्तु उस दुखी युवक ने और भी दुखी होकर कहा मै उसके लिए नही रो रहा हूँ। मैं अपने ही लिए रो रहा हूँ। मैने भी पानी को शराब मे बदला है। और मैने भी कोढियो को स्वस्थ किया और अधो को आँखे दी है। मैं भी पानी पर चला हूँ और मैने भी लोगो से प्रेतात्माये निकालकर बाहर की है। और मरुस्थलो मे जबकि पास मे भोजन नही था मैंने भी भूखो को भोजन दिया है। और कब्रो मे सो गये मुर्दो को मैंने भी जगाया है। उस आदमी ने—जीसस ने जो भी किया वह सब मैने भी किया है। और फिर भी किया है। और फिर भी उन्होंने मुझे सूली नहीं दी? (And yet they have not crucifiedg me ?)"

२७-१-१९७१

[प्रति · स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

१८/यही जवाब है इसका कि कुछ जवाब नहीं

मेरे प्रिय,

प्रेम। सवाल हो तो जवाब भी हो सकता है।
सवाल ही नही है।
प्रतीत होता है कि है।
फिर भी नही है।
इसलिए, जवाब खोजने जो गया वह भटका।
सवाल ही खोजें—सवाल मे ही खोजें।
सवाल है या नही—पहले यही खोजें।
और जिसने सवाल खोजा उसका सवाल गिर जाता है।
और फिर जवाब है।
सवाल के रहते जवाब नही है।
सवाल के गिरते ही जवाब है।
सवाल का गिरना ही जवाब है।
"मेरा खत उसने पढा, पढके नामावर से कहा।"
और मैं भी कहता हूँ कि बिल्कुल ठीक कहा।
"यही जवाब है इसका कि कुछ जवाब नही।"
लेकिन, ध्यान रहे कि यह जवाब है।

२८-१-१९७१

प्रति श्री इन्द्रराज आनंद, बम्बई]

१९/स्वीकार से—शांति, शून्यता और रूपान्तरण

मेरे प्रिय,

प्रेम । अस्वीकार मे दुख है ।

जो है—जैसा है—उससे सघर्ष मे पीडा है ।

और पीडा बहुत—और परिवर्तन जरा भी नहीं ।

स्वीकार शाति है ।

स्वीकार शून्यता है ।

और, शाति रूपान्तरण (Transformation) है ।

शून्य में नया जन्म है ।

अब कब तक लडियेगा स्वय से ?

ऊबिये भी !

छोडिये भी !

और मै कहता हूँ कि जो लडकर नहीं मिला, वह हारकर मिल जायेगा ।

लेकिन यह जीतने की विधि और व्यवस्था (strategy) नही है !

इसलिये, जीतने के लिए मत हारिये ।

बस, हारिये—बेशर्त ।

और जीत उसका परिणाम (consequence) है ।

२८-१-१९७१

[प्रति श्री इन्द्रराज आनद, बम्बई]

२०/प्रतीक्षारत तैयारी—विस्फोट को झेलने की

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम। कुछ करो नही बस देखो।

नाटक के एक दर्शक की भाति।

नाटय-गृह मे—पर नाटक में नहीं।

शरीर नाटय-गृह है और तुम दर्शक हो।

ऊर्जा उठती है—ऊर्ध्वगामी होती है तो ऐसे ही आघातो से तन-तन्तु काप-काप उठते हैं।

ऊर्जा अपना नया यात्रा-पथ निर्माण करती है तो आधी मे सूखे पत्तो की भाति शरीर आदोलित होता है।

फिर जैसे-जैसे नये प्रवाह-पथ निर्मित हो जावेगे वैसे-वैसे ही शरीर की पीडा खो जावेगी।

फिर आज जो आघात जैसा प्रतीत होता है वही आनद की पुलक बन जाता है—ऐसे आनद को जो कि शरीर में घटित होता है पर शरीर का नहीं है।

और निकट है वह क्षण।

पर उसके पूर्व बहुत बार तूफान आयेगा ऊर्जा का और चला जायेगा।

उफान उठेगा और शात हो जायेगा।

इससे चिंतित मत होना।

क्योकि, ऐसे ही विस्फोट (Explosion) की तैयारी होती है।

गौरीशकर के शिखर-अनुभव (Peak-Experience) के पूर्व अनेक छोटे-छोटे शिखरो के अनुभव से गुजरना पडता है।

उससे ही विराट को बूँद में झेलने की क्षमता निर्मित होती है।

२९-१-१९७१

[प्रति स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

२१/अहंकार चुराने वाले चोर

मेरे प्रिय,

प्रेम । चोर खोजे नहीं जाते ।

न ही निमन्त्रित किये जा सकते हैं ।

चोर तो आते हैं ।

द्वार खुला रखें—बस ।

द्वार खुला हो तो स्वयं परमात्मा भी चोरी के लिए ललचाता है ।

२९-१-१९७१

[प्रति श्री इन्द्रराज आनंद, बम्बई]

२२/मिटने की तैयारी रख

प्यारी नीला,

प्रेम । प्रभु प्रकाश के रूप में तुझ पर उतर रहा है ।
हृदय के द्वार खुले रख ।
और भयभीत न होना ।
प्रकाश के साथ एक हो जाना है ।
यही साधना है तेरे लिए ।
प्रकाश ही रह जाय और तू न रहे ।
सागर ही बचे, बूंद नहीं ।
ज्ञान ही बचे, ज्ञाता नहीं—ज्ञेय नहीं ।
वही है साध्य ।
संकल्प से, समर्पण पूर्वक आगे बढ़ ।
और मिटने की तैयारी रख ।
क्योंकि, स्व का मिटना ही सर्व का पाना है ।

२९-१-१९७१

[प्रति श्रीमती नीला, विलेपार्ले, बम्बई]

२३/एक ही भासता है अनेक

मेरे प्रिय,

प्रेम । एक ही भासता है अनेक ।

दृष्टियो के कारण ।

दृष्टि सृष्टि है ।

वही है सत्य—वही है सुन्दर—वही है शिव ।

और भेद उसमे नही, सदा ही देखने वाली आखो मे है ।

और इसलिए वह तीनो में है और तीनो के पार भी है ।

और इसलिए जिसे उसे उसकी समग्रता मे अनुभव करना है, उसे समस्त दृष्टियो से मुक्त हो जाना होता है ।

लेकिन तब शब्द उसे व्यक्त नही करते है—न सत्य, न सुन्दर, न शिव ।

फिर तो शून्य ही उसे व्यक्त करता है ।

फिर तो मौन ही उसकी अभिव्यक्ति है ।

२९-१-१९७१

[प्रति श्री रजनीकात, राजकोट, गुजरात]

२४/स्वीकार से दुःख का विसर्जन

मेरे प्रिय,

प्रेम। दुःख को स्वीकार करें।

दुःख से भागें नहीं।

जो दुःख से भागता है, दुःख उससे कभी नहीं भागता।

जो दुःख से नहीं भागता है, दुःख उससे भाग जाता है।

यही शाश्वत नियम है।

दुःख से बचने के लिए ध्यान न करें।

ध्यान करें—ध्यान के लिए ही।

ध्यान के आनंद के लिए ही ध्यान करें।

और दुःख फिर खोजे से भी नहीं मिलेगा।

२९-१-१९७१

[प्रति श्री दासभाई पटेल, विजापुर, जिला-महेसाणा, गुजरात]

२५/जन्मों का अंधेरा और ध्यान का दिया

मेरे प्रिय,

प्रेम। रूपांतरण की घड़ी निकट है।

सजग रहें—साक्षी रहें और शेष प्रभु पर छोड़ दें।

अंधेरा जन्मों-जन्मों का है फिर भी चिन्ता न करें क्योंकि वह अंधेरा ही है न?

दिये के जलते ही वह व्यवधान नहीं बन सकता है।

वह उसकी सामर्थ्य ही नहीं है।

२९-१-१९७१

[प्रति श्री लाला सुन्दरलालजी, जवाहरनगर दिल्ली-६]

२६/प्रार्थना, श्रद्धा, समर्पण—बाह्य नहीं आंतरिक घटनाएँ

प्रिय योग लक्ष्मी,

प्रेम। शब्दो मे प्रार्थना नही है।

नही जुडे हाथो मे श्रद्धा है।

और नही झुके सिरो में समर्पण।

क्योंकि, शरीर आत्मा नहीं है।

एक मस्जिद की मीनार से भक्तो के लिए प्रार्थना की पुकार की जा रही थी। परमात्मा का नाम सुबह भी सोये पडे लोगो के कानो मे गूंज रहा था। और जो जाग गये थे, वे भी जागे हुए कहाँ थे?

एक फकीर मस्जिद के बाहर खडा हँस रहा था।

किसी अजनबी ने उससे पूछा कि मीनार मे यह आवाज किस लिए लगाई जा रही है—यह क्या हो रहा है?

फकीर ने कहा "उसके ही लिए तो मै भी हँस रहा हूँ। वह आदमी मीनार पर चढकर एक ऐसा कार्य कर रहा है जिसका कि उसे कुछ भी पता नही है। जैसे कि कोई एक खाली डब्बे को हिलाये और उसमें से आवाज के निकलने की आशा करे—ऐसा ही वह आदमी भी कर रहा है!

शब्दो मे सत्य नही है।

शब्द खाली डब्बो की भांति ही है।

प्रार्थनाओ मे प्रार्थनाये कहाँ है?

प्रार्थनाएँ खाली डब्बो की भांति ही है।

और आदमी प्रभु को पाना चाहता है?

ऐसे ही जैसे कि कोई खाली डब्बे को हिलाये और उसमें से आवाज के निकलने की आशा करे।

१०-२-१९७१

[प्रति मा योग लक्ष्मी, बम्बई]

२७/आनंद का राज—न चाह सुख की, न भय दुख का

प्यारी मोनू,

प्रेम। चाह नहीं जहां सुख की, वहां भय भी नहीं है दुख का।

सुख की चाह ही दुख के भय की जननी है।

ईसा गुजर रहे थे एक गांव से।

देखा उन्होने राह के किनारे दीवार के सहारे बैठे कुछ अत्यत दुखी लोगो को।

ऐसे थे वे सतापग्रस्त कि जैसे मौत ही उनके सामने हो।

भय से कपित, भय से पीले हुए—मरणासन्न।

ईसा ने पूछा उनसे "यह हालत कैसे हुई तुम्हारी ?"

उन्होने कहा 'नर्क के भय के कारण।"

और थोडा आगे जाने पर ईसा ने फिर कुछ लोगो को वैसी ही स्थिति मे देखा।

आँखे उनकी पथरा गई थी और भिन्न-भिन्न आसनो और मुद्राओ मे वे ऐसे बैठे थे कि जैसे मर ही गये हो।

ईसा ने उनसे भी पूछा "तुम्हारा क्या है दुख ?"

बोले वे "स्वर्ग की आकांक्षा।"

और आगे बढने पर ईसा ने कुछ लोगों को वृक्षो की छाया मे नाचते भी देखा।

आनद मग्न—भाव विभोर

कौन-सा खजाना मिल गया था उन्हे ?

या किस नर्क से बच गये थे वे ?

या कौन-सा स्वर्ग का द्वार खुल गया था उनके लिए ?

उनके चेहरो पर चिह्न थे लम्बी यात्रा के—लेकिन थकान नही थी, वरन् उपलब्धि का विश्राम था।

और उनकी आँखों में तपश्चर्या का सौंदर्य था—लेकिन अहंकार की कोई भी रेखा न थी।

उनकी आत्माओ मे आनद की वर्षा हो रही थी और उनके चारों ओर किसी अलौकिक ही प्रकाश के आभा-मडल थे।

ईसा ने उनसे भी पूछा "मित्रो ! तुम्हारे इस अपूर्व आनद का राज़ क्या है—रहस्य क्या है ?"

बोले वे "आकांक्षा नहीं सुख की—भय नहीं दुख का। चाह नहीं स्वर्ग की—चिन्ता नहीं नर्क की। और जब से चाह और चिन्ता छूटी है तभी से जो है उसे ही जानकर और पाकर हम आनंदित और अनुगृहीत है।"

ईसा ने कहा "यही हैं वे लोग जो कि सत्य को उपलब्ध होते हैं—यही हैं वे लोग जो कि सदा ही प्रभु की उपस्थिति में जीते हैं।"

१०-२-१९७१

[प्रति मा योग क्राति, जबलपुर]

२८/शब्दों की यात्रा में सत्य की मृत्यु

प्यारी मौनू,

प्रेम । थ्योडोर रेक ने अपने बचपन मे सुनी कहानी स्मरण की है ।

एक ग्रामीण बूढा मर गया था ।

उसके बेटे ने अपने स्वर्गीय पिता का चित्र बनवाना चाहा इसलिए वह शहर गया और एक चित्रकार को उसने अपने पिता के चेहरे, आँखो, ओठों, बालो आदि के सबध मे ब्यौरे से बताया ।

चित्रकार ने उसे दो सप्ताह बाद आकर चित्र ले जाने को कहा ।

लेकिन, जब दो सप्ताह बाद वह चित्र लेने गया तो चित्र को देखकर जोर जोर से रोने लगा और बोला "**मेरे गरीब पिता । इतने ही थोडे समय में तुम कितने बदल गये हो ?** (Poor Father ! How Much have you changed in such a short time ?)"

जीवन-सत्यो को बोलते समय मुझे भी यह कहानी बार-बार याद आ जाती है ।

सत्य को शब्द दिया नही कि मैं कहता हूँ अपने से ही "**बेचारा सत्य ! इतने ही थोडे समय में कितना बदल गया है ।**"

११-२-१९७१

[प्रति मा योग क्रांति, जबलपुर]

२९/जीवन है—दुर्लभ अवसर

प्यारी रमा,

प्रेम। अवसर है जीवन, स्वयं को पाने के लिए।
अनन्त यात्रा के बाद मिला हुआ।
दुर्लभ है—लेकिन खोया जा सकता है।
और साधारणत: खोया ही जाता है।
सावधान हो कि जो साधारणत: होता है, वह न हो।
समय है अल्प और पाना है समयातीत को।
शक्ति है सीमित और पाना है असीम को।

१२-२-१९७१

[प्रति: सौ० रमा पटेल, अहमदाबाद]

३०/एकमात्र सम्पत्ति—परमात्म-श्रद्धा

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम। सफीक ने एक बार अपने शिष्यो से कहा "मेरी पूर्ण श्रद्धा है परमात्मा पर। और एक बार मे सिर्फ एक पैसा साथ मे लेकर तीर्थ यात्रा पर निकल गया था। लम्बी थी यात्रा लेकिन सब सकुशल पूर्ण हुआ और मैं वापिस भी लौट आया और वह पैसा मेरे पास ही रहा और आज भी मेरे पास है।"

शिष्य आश्चर्य चकित हो एक दूसरे से चर्चा करने लगे।

उनकी आँखों में अपने गुरु के प्रति प्रशंसा के दिये जलने लगे।

लेकिन, यह देख सफीक अचानक उदास हो गया।

और फिर उसकी आँखे आसुओ से भर गयी।

लेकिन, तभी एक युवक उठा और उसने सफीक से कहा "यदि आपने साथ मे एक पैसा ले लिया था तो आप कैसे कह सकते है कि आपकी श्रद्धा पैसे पर नही—परमात्मा पर थी ?"

सफीक के उदास आँसू खुशी के फूलों में बदल गये और उसने कहा "मेरे प्यारे युवक! तुम ठीक कहते हो। जब प्रभु पर भरोसा है तो एक पैसा भी असगत है। और एक पैसे पर भरोसा है तो प्रभु पर भरोसा नही है। और मैंने यह कहानी तुम्हारी परीक्षा के लिए ही कही थी। मेरे पास जो पैसा था, वह श्रद्धा का ही था। इसलिए ही तो वह खर्च न हो सका। सदेह के साम्राज्य भी जीवन की यात्रा में खर्च हो जाते हैं और श्रद्धा का एक पैसा भी बच जाता है। श्रद्धा जिनके पास नहीं, वे सदा ही भिखारी हैं। और श्रद्धा जिनके पास है उनके पास तो प्रभु का ही खजाना है—अकूत—अनादि—अनत।"

१२-२-१९७१

[प्रति स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

३१/प्रकाश-किरण से सूर्य की ओर

मेरे प्रिय,

प्रेम। अंधेरे में जलता है जैसे दिया—ऐसे ही जलो।

विराट है अंधकार, पर निर्बल—नपुंसक।

छोटा है दिया—नन्ही है ज्योति, पर सबल—सशक्त।

क्योंकि, प्रकाश की छोटी-सी किरण भी अनन्त सूर्यों को स्वयं में छिपाये है।

पहचानो—स्मरण करो और फिर तुम पाओगे कि जो अप्रगट था, वह प्रगट होने लगा है और जो मात्र संभावना थी वह वास्तविक हो रही है।

१४-२-१९७१

[प्रति श्री विनुकुमार एच० सुथार, चाचरिया, पाटण, उत्तर गुजरात]

३२/सुवास—आंतरिक निकटता की

प्यारी मृणाल,

प्रेम। नही—अब तू मुझे दूर नही पायेगी।

दूर तो हम केवल उनमे ही होते है जिनके कि हम निकट ही नही हो पाते है।

आंख करेगी बद और पायेगी कि मै पास ही हूँ।

और इस निकटता की सुवास ही और है।

अर्थ भी और।

अभिप्राय भी और।

आयाम भी और।

१४-२-१९७१

[प्रति सौ० मृणाल जोशी, १०२४, सदाशिव पेठ, पूना]

३३/ध्यान की सरलता—निःसंशय, निर्णायक व संकल्पवान चित्त के लिए

मेरे प्रिय,

प्रेम। ध्यान में सफलता मिलते ही अतीत जन्मों की स्मृति-यात्रा पर भेज सकूँगा।

वह कार्य कठिन नहीं है।

असली कठिनाई ध्यान की ही है।

लेकिन, जितने संकल्प से ध्यान में लगे हैं, उससे आशा बँधती है कि वह भी कठिन सिद्ध नहीं होगा।

वैसे तो ध्यान भी सरल है।

लेकिन मनुष्य चित्त है संशय से कम्पित, निर्णय से हीन, संकल्प में दरिद्र—इसलिए ही ध्यान कठिन हो जाता है।

निःसंशय हो आगे बढ़ें।

निर्णायक हो आगे बढ़ें।

संकल्प में समग्र हो आगे बढ़ें।

मैं सदा साथ हूँ।

१४-२-१९७१

[प्रति श्री राणुलाल सकलेचा, मेसर्स मिश्रीलाल राणूलाल सकलेचा, सदर बाजार, धमतरी, म० प्र०]

३४/अदृश्य, अरूप, निराकार की खोज

प्यारी प्रिया,

प्रेम। दृश्य भी अदृश्य ही है।
गौर से देख?
रूप भी अरूप ही है।
जरा गहरे देख?
आकार भी निराकार ही है।
फिर से देख?
अदृश्य दृश्य मालूम पडता है—है नही।
अरूप दिखाई नही पडता है—है वही।
निराकार कही भी मिलता नही—क्योंकि वही सब कही है।

१४-२-१९७१

[प्रति मा योग प्रिया, आजोल, गुजरात]

३५/आनंदमग्न भाव से नाचती, गाती, निर्भार चेतना का ही ध्यान में प्रवेश

प्यारी प्रिया,

प्रेम। खुश हूँ कि नाचती-गाती ध्यान के गहरे प्रयोग मे प्रवेश कर रही है।

उदास है जिनकी चेतना वे ध्यान मे प्रवेश करने मे बडी कठिनाई पाते है—क्योंकि, ध्यान ही उनमें प्रवेश करने के लिए द्वार नही खोज पाता है।

उदासी आध्यात्मिक रोग है।

और तथा-कथित आध्यात्मिक लोगो मे बहु-प्रचलित!

उदास चित्त बन जाता है डबरा—अपने मे ही बन्द।

फिर सागर की यात्रा हो भी तो कैसे हो?

सागर के लिए तो चाहिये सरिता का आनद-मग्न भाव।

तू सरिता की भाँति ही दौड—गा और नाच।

सागर की यात्रा का रहस्य सरोवरो के पास नही सरिताओं के ही पास है।

१५-२-१९७१

[प्रति मा योग प्रिया, आजोल]

३६/शून्य, शांत व मौन में—वर्षा अनुकम्पा की

मेरे प्रिय,

प्रेम । प्रभु की अनुकपा मे विश्राम करो, जैसे थका-मादा राही वृक्षो की घनी छाया मे विश्राम करता है ।

और स्वय को मौन मे डुबा दो ताकि उस मौन सगीत को सुन सको जो उसकी अनुकपा से सदा-सदैव झरता रहता है ।

ध्यान में बनना है दर्पण—शून्य, शात, सोयी झील की भाँति—लेकिन जागते हुये ताकि उसकी अनुकपा का आकाश अपनी सारी सपदा के साथ तुममें झाक सके ।

इस गहरे ध्यान की अवधि मे पाओगे तुम कि मेरी शुभकामनाओ के फूल प्रतिपल तुम पर बरस रहे है ।

१५-२-१९७१

[प्रति स्वामी चैतन्य भारती, दिल्ली]

३७/चमत्कार—'न–होने' पर भी 'होने' का

प्यारी उर्मिला,

प्रेम। सत्य की प्यास है जिन्हे—उन्ही के लिए हूँ मैं।
केवल उन्हीं के लिए।
स्वय का होना हो गया पूरा।
वह यात्रा पूरी हुई।
सरिता खो गई सागर मे।
बीज मिल गया मिट्टी मे।
हो गया हूँ शून्य।
देखोगी आँखो मे मेरी तो जानोगी।
झाकोगी वहाँ आकाश मे—अवकाश मे।
लेकिन, फिर भी हूँ।
और यही चमत्कार है।
सरिता जैसे सागर मे है—ऐसे ही।
बास की पोगरी की भाँति हूँ—रिक्त, स्वय मे।
लेकिन, उस रिक्तता को प्रभु ने अपने स्वरो से भर दिया है।
और ऐसा होना नया नही है।
ऐसा ही सदा होता है।
जो स्वय से भरे हैं, वे सत्य से खाली रह जाते हैं।
और जो खाली हैं, वे भर दिये जाते हैं।

१५-२-१९७१

[प्रति श्रीमती उर्मिला खेतान द्वारा—श्री ज्वाला प्रसाद खेतान, ओम् इजीनियरिंग क० कूडा घाट, गोरखपुर]

३८/असार्थक की अग्नि-परीक्षा

मेरे प्रिय,

प्रेम । नर्क स्वर्ग के विपरीत नही है—वरन स्वर्ग का मार्ग है ।
ससार भी शत्रु नही है—वरन् मोक्ष का द्वार है ।
अग्नि में डाला गया स्वर्ण भी तो अग्नि को मित्र नही मान पाता होगा न ?
पर अग्नि में ही स्वर्ण निखरता है और शुद्ध होता है ।
जलता है केवल वही जो व्यर्थ है ।
सार्थक तो सदा ही निखरता है ।

१५-२-१९७१

[प्रति श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित, उदयपुर, राजस्थान]

३९/श्रद्धा के दुर्लभ अंकुर

प्यारी मृणाल,

प्रेम। मुश्किल में तो पडेगी ही?

अज्ञात की यात्रा यात्रा कहा—बस छलाग है।

ज्ञात का तट छूटता है और दूसरे तट का कोई पता ही नहीं?

और यही आनद भी है।

यही रहस्य भी।

तर्क यह करे भी तो कैसे करे?

सदेह सोचे भी तो कैसे सोचे?

बस श्रद्धा ही यह कर पाती है।

या चित्त की जिस दशा मे यह हो पाता है उसे ही मैं श्रद्धा कहता हू।

यह जानकर अति आनदित हूँ कि तुझमे श्रद्धा अकुरित हुई है।

उसके ही लिए तेरी सारी पीडा थी।

अब एक नयी ही मृणाल का जन्म हुआ है।

शायद यह खबर अभी तुझ तक न पहुँची हो पर मुझ तक पहुँच गयी है।

१५-२-१९७१

[प्रति सौ० मृणाल जोशी, पूना]

४०/ध्यान में प्रभु—इच्छा का उद्घाटन

प्रिय ब्रह्म भारती,

प्रेम । सन्यास है समर्पण—प्रभु में ।

फिर उसकी मर्जी ही जीवन है ।

लेकिन, उसकी मर्जी क्या है—यह खोजना एक गूढ़ कला है ।

ध्यान के बाद वह भी सिखाऊंगा ।

या यह भी हो सकता है कि ध्यान के बाद उसे सीखने की आवश्यकता ही न रहे ।

क्योंकि, अक्सर तो वह ध्यान से स्वतः ही फलित हो जाती है ।

१५-२-१९७१

[प्रति स्वामी ब्रह्म भारती, पाली, मारवाड़ जंक्शन, राजस्थान]

४६/प्रतीक्षा में ही राज़ है परम उपलब्धि का

प्रिय कृष्ण कबीर,

प्रेम। प्रतीक्षा मे ही है राज (Secret) परमोपलब्धि का।
क्योकि, प्रतीक्षा समर्पण है।
क्योकि, प्रतीक्षा श्रद्धा है।
क्योकि, प्रतीक्षा प्रार्थना है।
प्रतीक्षा है अथक धैर्य—अथक सतोष—अथक आशा।
प्रतीक्षा परीक्षा भी है।
आकाक्षा की—अभीप्सा की।
बीज की भाति ही बाट जोहो।
अधेरे मे—भूमि-गर्भ मे।
आनद से—आत्म विश्वास से।
अकुर फूटता ही है।
वृक्ष उगता ही है।
फूल खिलते ही है।

१५-२-१९७१

[प्रति स्वामी कृष्ण कबीर, अहमदाबाद]

४२/स्वयं को तैयार करना—श्रद्धा से, शांति से, संकल्प से

मेरे प्रिय,

प्रेम। तुम्हारी स्थिति मेरे ध्यान में है।

भय न करो और आगे बढ़ो।

भय के अतिरिक्त भय करने योग्य और कुछ भी नहीं है।

अनूठे अनुभव होंगे।

अपरिचित से परिचय होगा।

अनजान के द्वार निकट ही हैं।

तुम तैयार हुए कि वे खुले।

श्रद्धा से, शान्ति से, संकल्प से स्वयं को तैयार करना है।

और स्मरण रखो कि मैं सदा साथ हूँ।

१५-२-१९७१

[प्रति : श्री माणकचंद लूणावत, फुल बाजार, जालना, महाराष्ट्र]

४३/अभिशाप में भी वरदान खोजो

प्रिय कृष्ण यशोधर,

प्रेम। सन्यास को समझो कीमिया (Alchemy) अभिशापो को वरदानों में रूपान्तरित करने की।

जब भी दिखाई पड़े अभिशाप—तो पहले प्रभु को धन्यवाद और फिर खोजो उसमें वरदान।

अभिशाप के बीज में खोजते ही वरदान का अकुर फूट आता है।

दु ख मे छिपा मिलता है सुख।

और अंधेरी रात मे सुबह का उजाला ढका मिलता है।

१५-२-१९७१

[प्रति स्वामी कृष्ण यशोधर, द्वारा—श्री दिलीप सावंत, ५१७, बुधवार पेठ, पूना–२]

४४/अवलोकन—वृत्तियों की उत्पत्ति, विकास व विसर्जन का

प्रिय कृष्ण यशोधर,

प्रेम। भीतर की आवाज पर ज्यादा से ज्यादा ध्यान दो।

उसे सुनो एकाग्र होकर।

उसके द्वारा साक्षी जन्म लेना चाह रहा है।

क्रोध हो कि प्रेम—जैसे ही भीतर से कोई कहे 'देख ले! यह है तेरा क्रोध!' —वैसे ही शांत-एकाग्रता से देखने में लग जाना।

निश्चय ही देखते ही वृत्ति विलीन हो जायेगी।

तब वृत्ति को विलीन होते देखना।

विलीन हो गया देखना।

वृत्ति का उठना, फैलना, विलीन होना, विलीन हो जाना—जब चारों स्थितियाँ समग्र रूपेण देख ली जाती हैं तब ही वृत्तियो का रूपांतरण (Transformation) होता है।

और चित्त-वृत्तियों का रूपांतरण ही निरोध है।

और ऐसे निरोध को ही पतंजलि ने योग कहा है।

योग द्वार है उसका जो कि चित्त के पार है।

और जो चित्त के पार है वही शाश्वत है, वही सत्य है।

१५-२-१९७१

[प्रति स्वामी कृष्ण यशोधर, पूना]

४८/सिद्धांत—क्रांति का अंत है

मेरे प्रिय,

प्रेम। क्रांति सिद्धान्त नहीं है।

वरन्, जीने का एक ढंग है।

क्योंकि, जहाँ सिद्धान्त है वहीं क्रांति का अंत है।

सिद्धान्त जम गयी क्रांति है, जैसे पानी बर्फ हो जावे।

सिद्धान्त सदा जड़ है।

क्रांति सदा जीवंत है।

इसलिए, वास्तविक क्रांतिकारी को क्रांतिवादी होने का उपाय नहीं है।

१५-२-१९७१

[प्रति श्री चन्द्रकान्त एन० पटेल, बड़ोदा, गुजरात]

४६/प्रतिक्रियावादी तथाकथित क्रांतिकारी

मेरे प्रिय,

प्रेम । क्राति भी क्रातिकारी नही है ।

वह भी अब पिटी हुई बात है ।

वह भी अब सुव्यवस्थित प्रतिक्रियावाद है ।

क्राति में भी क्राति की जरूरत है ।

इसस स्वभावत क्रातिकारी भी मुझसे नाराज होगे ।

और प्रतिक्रियावादी तो सदा से नाराज थे ही ।

इस पर मै खूब हँसता हूँ ।

जीवन के मार्ग अनूठे है ।

आज जो प्रतिक्रियावादी (Reactionaries) है, वे ही कल क्रातिकारी (Revolutionaries) थे ।

और आज जो क्रातिकारी है, वे ही कल प्रतिक्रियावादी हो जावेगे ।

दोनो में विरोध नही—वरन् गहरा पारिवारिक सम्बन्ध है ।

पारिवारिक ही नही—जैविक (Biological) भी है ।

और मजा तो यह है कि क्रातिकारी प्रतिक्रियावादियो के पिता है ।

१५-२-१९७१

[प्रति . श्री चन्द्रकान्त एन० पटेल, बडौदा, गुजरात]

४७/सत्ता सदा ही क्रांति विरोधी है

मेरे प्रिय,

प्रेम । क्रांति सत्ता नहीं बन सकती है ।

क्रांति की नियति सदा ही विद्रोह (Rebellion) है ।

सत्ता बनते ही क्रांति प्रतिक्रियावादी हो जाती है ।

क्योंकि सत्ता के निहित-स्वार्थ हैं ।

सत्ता सदा ही क्रांति-विरोधी है—स्वरूपतः ऐसी अनिवार्यता है ।

और क्रांति सत्ता-विरोधी है ।

यह उसका आन्तरिक-स्वरूप है ।

यह अस्तित्वगत विरोध है और इसे न समझ पाने से बड़ी उलझनें पैदा होती हैं ।

क्रांतिकारी को सत्ता का ख्याल ही छोड़ देना चाहिये ।

क्रांतिकारी सत्ता के बाहर और सत्ता-विरोधी रहकर ही जीवन को गति दे सकता है ।

१५-२-१९७१

[प्रति श्री चन्द्रकान्त एन० पटेल, बड़ौदा, गुजरात]

५८/ध्यान है—द्रष्टा, अकर्ता, अभोक्ता रह जाना

मेरे प्रिय,

प्रेम। जो भी हो रहा है उसे दर्शक की भाँति देखते रहो।

चित्त को समझो एक नाट्य-मच।

अनुभवो का नाटक।

स्वयं बैठो दूर और देखो।

द्रष्टा बनो।

कर्ता नही।

भोक्ता नही।

यही ध्यान (Meditation) है।

१५-२-१९७१

[प्रति श्री धनवत सिंह ग्रोवर, द्वारा श्री प्रतापसिंह, संतोखीसिंह, बाजार माइ सावन, अमृतसर, पंजाब]

४९/समग्र जिज्ञासा में प्रश्न का गिर जाना

प्रिय कृष्ण यशोधर,

प्रेम। "मैं कौन हूँ ?" इस प्रश्न को उठने दो—प्राणो को इससे भर जाने दो।

यह जिज्ञासा जितनी गहरी उतरे उतनी ही शुभ है।

और उत्तर की शीघ्रता न करो।

मन के द्वारा दिये गये उत्तरो से सावधान भी रहना।

तुम्हे स्वय ही उत्तर नही देना है।

उत्तर को आने दो।

दो नहीं, आने दो।

प्रश्न के रहने उत्तर नही आयेगा।

प्रश्न भी अतत बाधा है।

पर प्रश्न तब तक ही है जब तक समग्रता से नहीं पूछा गया है।

प्रश्न हुआ समग्र कि समाप्त हुआ।

और निष्प्रश्न चेतना ही उत्तर है।

१६-२-१९७१

[प्रति स्वामी कृष्ण यशोधर, पूना]

५०/खोना ही 'उसे' खोजने की विधि है

प्रिय चैतन्य भारती,

प्रेम । दूर नही खोजना है ।

क्योकि वह निकट है ।

वस्तुत तो खोजना ही नही है ।

क्योकि, वह खोजने वाले में ही है ।

खोजना नही—खोना ह ।

या कि खोना ही उसे खोजने की विधि है ?

खोओ और जानो ।

खोओ और पाओ ।

१६-२-१९७१

[प्रति . स्वामी चैतन्य भारती, दिल्ली]

५१/धैर्यपूर्वक पोषण—क्रांति के गर्भाधान का

मेरे प्रिय,

प्रेम । जानता हूं भलीभांति कि क्या मुझे करना चाहिये ।
और वही कर भी रहा हूँ ।
लेकिन, प्रत्यक्ष कार्य से कुछ भी नही हो सकता है ।
परोक्ष के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही है ।
क्राति भी सीधी नही हो सकती है ।
परम्पराओ मे अत्यधिक उलझाव के कारण ।
घोषणा पूर्वक भी कुछ करना सभव नही है ।
मात्र शहीद होने का मजा लेना हो तो बात दूसरी है ।
अत्यन्त धैर्य की आवश्यकता है ।
और परोक्ष होने के साहस की भी ।
शहीद होने के सतही रस से भी बचने की अत्यधिक जरूरत है ।
स्थिति जटिल है—असाधारण रूप से जटिल ।
इसलिए अत्यन्त जटिल पगडडियो से गुजरना पडेगा ।
राजपथ से ज्यादा धोखा किसी और चीज में नहीं है ।

१६-२-१९७१

[प्रति श्री चन्द्रकान्त, एन० पटेल, बडौदा, गुजरात]

५२ आत्म-विश्वास से खटखटाओ—प्रभु के द्वार को

प्रिय आनन्द अमृत,

प्रेम। अंधेरा सघन होता है सुबह-सुबह होने के पूर्व।
ऐसा ही अंधेरा तुम्हारे चारो ओर है।
ध्यान को गहरा करो ताकि सुबह के फूटने मे सहायता मिले।
अंधेरे से निराश न होना।
वह तो केवल सुबह के निकट होने का आश्वासन है।
आशा से, आत्म विश्वास से खटखटाओ प्रभु के द्वार को।
संकल्प से आगे बढो।
द्वार पर ही तो खड़े हो।
छोड़ो सब भय।
और आगे बढो।
उत्तिष्ठत! जाग्रत! प्राप्य वरान्निबोधत!
उठो!
जागो!
और भगवान् के द्वारा दिये वरदान स्वरूप इस जीवन को समझ लो।

१६-२-१९७१

[प्रति . स्वामी आनंद अमृत, अहमदाबाद]

८३/अनजाना समर्पण

प्यारी मृणाल,

प्रेम । तू समर्पित करने का विचार कर रही है ?

पागल है फिर !

क्योंकि, समर्पित तू हो चुकी है ।

और स्वीकृति भी ।

उसके चरणों में तेरा सिर रख गया है—जिसके चरणों को कि तू अभी भी खोज रही है ।

और उसके हाथ तेरे सिर पर हैं—जिसके हाथों को कि तू अभी भी खोज रही है !

ऐसा अक्सर ही होता है ।

जैसे कि अँधेरी अमावस की रात्रि में अचानक सूरज निकल आये तो आँखें प्रकाश को तो देख ही नहीं पायेंगी उल्टे और भी बन्द हो जावेंगी ।

ऐसा ही तेरे साथ भी हुआ है ।

या कि जैसे भिखारी के भिक्षापात्र में अचानक कोहनूर आ जावे तो भी वह भिक्षा माँगे ही चला जावे !

कोहेनूर को पहचानने में भी तो समय लगता है न ?

१६-२-१९७१

[प्रति सौ० मृणालिनी जोशी, पूना]

५४ तुम्हारी समस्त संभावनाएँ मेरे समक्ष साकार हैं

प्रिय कृष्ण कबीर,

प्रेम। तुम जो नही जानते तुम्हारे सबध में—वह भी मैं जानता हूँ।

क्योकि तुम अभी स्वय मे कहा परिचित हो ?

तुम्हारी सभावनायें मेरे समक्ष साकार है।

तुम जो हो और जो हो सकते हो, वह सभी खुली किताब की भाँति मै पढ पाता हूँ।

तुम्हारा भविष्य भी।

तुम्हारी नियति (Destiny) भी।

और शुभ है लक्षण।

इस जीवन में ही बहुत कुछ हो सकेगा।

जीवन-निधि को तुम निश्चय ही खोज पाओगे।

लेकिन, यह सुन शिथिल मत हो जाना।

यह जान आलस्य में न पड जाना।

अन्यथा सब खोया जा सकता है।

श्रेष्ठतम अवसर भी खोये जा सकते हैं।

१६-२-१९७१

[प्रति : स्वामी कृष्ण कबीर, अहमदाबाद]

५७/सूक्ष्म और अदृश्य कार्य

मेरे प्रिय,

प्रेम । बाह्य यात्रायें बन्द कर रहा हूँ ।

लेकिन, जो सच ही पुकारेंगे उनके लिए अन्तर्यात्राओं के द्वार भी खोल रहा हूँ ।

नही—वचित कोई भी नही हो सकेगा ।

तुम्हारे हृदय मे आ जाऊगा ।

और तुमसे बोलूगा ।

और शायद जो तुम बाह्य-वाणी से कभी भी न समझ पाये थे, वह इस अन्तर्वाणी से समझ पाओगे ।

सूक्ष्म को बहुत कहा स्थूल से ।

अब सूक्ष्म को सूक्ष्म से ही कहना है ।

१६-२-१९७१

[प्रति श्री राजेन्द्र, राजेन्द्र बाइसिकिल-इंडस्ट्रीज, गिलरोड, प्लाट-नारायण दास, लुधियाना, पंजाब]

७६/प्रभु-मंदिर की झलकें—ध्यान के द्वार पर

प्यारी प्रिया,

प्रेम। प्रभु के द्वार से ही बदलाहट शुरू हो जाती है।

मंदिर से उठे पूजा के स्वर प्राणो को भरने लगते हैं।

वेदी पर जलते दिये आँखो पर किसी अज्ञात लोक के संदेश को प्रेषित करने लगते हैं।

चंदन की कुंआरी सुगन्ध नासापुटो में भर जाती है।

ऐसा ही ध्यान के द्वार पर भी होता है।

क्योंकि, असली मंदिर का द्वार तो वही है न ?

१६-२-१९७१

[प्रति मा योग प्रिया, विश्वनीड, आजोल, गुजरात]

५७ अनुभूति में बुद्धि के प्रयास बाधक

प्रिय रजनी,

प्रेम । ध्यान तेरा रोज गहरा हो रहा है, यह जानकर अति आनंदित हूं ।

बहुत से अनुभव होंगे—लेकिन उन्हें बुद्धि से समझने के प्रयास में मत पड़ना ।

बुद्धि के प्रयास बाधा बन जाते हैं ।

और न ही कोई अनुभव पुनरुक्त हो ऐसी वासना ही करना ।

क्योंकि, ऐसी वासना भी बाधा बन जाती है ।

जो हो उसके लिए बस प्रभु को धन्यवाद दे आगे बढ़ जाना है ।

१६-२-१९७१

[प्रति कुमारी रजनी केलकर, "प्रभु छाया", १४०, शनिवार पेठ, पूना-३०]

७८ कामना दुःख है, क्योंकि कामना दुष्पूर है

प्यारी रमा,

प्रेम। कामना स्वप्न-सर्जक है।

कामना काल्पनिक कारागृहों की निर्मात्री है।

कामना दुःख है।

क्योंकि, कामना दुष्पूर है।

कामना से ऊपर उठे बिना न आत्मा है, न आनन्द है।

कामना को बिदा कर।

स्वप्नों को छोड।

स्वप्नों की जंजीरें सूक्ष्म हैं पर फौलाद से भी ज्यादा बाँधने वाली हैं।

१६-२-१९७१

[प्रति . सौ० रमा पटेल, अहमदाबाद]

५०/प्रभु-कृपा की अमृत वर्षा और हृदय का उल्टा पात्र

प्रिय आनद विजय

प्रेम । प्रभु की अमृत-वर्षा जब होती है तब ऐसी ही बाढ आती है ।

उसके हृदय मे कृपणता तो है ही नही न ?

पर हम ही है अभागे कि कभी अपने हृदय के पात्र को सामने फैलाते ही नही है ।

अहकार सकोच से ही सिकुडा रहता है ।

या दभ मे दबा रहता है ।

या अज्ञान मे ही भटकता रहता है ।

सन्यास अहकार का त्याग है—उसके समस्त स्थूल-सूक्ष्म रूपो मे ।

फिर स्वभावत ही हृदय का पात्र प्रभु के समक्ष फैल जाता है ।

और अमृत बरसने लगता है ।

वह तो बरस ही रहा था—लेकिन हमारा हृदय पात्र उल्टा था ।

१६-२-१९७१

[प्रति स्वामी आनद विजय, द्वारा – पुष्प कटपीस भडार, फर्म कालूराम पुष्प कुमार, जवाहर गज, जबलपुर]

६०/जन्मों का पुराना—विस्मृत परिचय

प्यारी साधना,

प्रेम। तू पागल की पागल रही!

कहा तुझसे किसने कि तेरा-मेरा परिचय दो दिन का है?

जल्दी ही तू जानेगी कि तुझसे भूल हो गयी है—या कि आज हो भी रही है?

इस पृथ्वी पर कुछ भी नया कहाँ है?

नये का भ्रम पुराने के विस्मरण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

ध्यान मे तो तू डूब ही रही है और इसलिए जल्दी ही अचेतन कक्ष—आलय-विज्ञान मे भी पहुँच जायेगी जहाँ कि सदा-सदा की स्मृतियाँ निवास करती है।

चित्त के स्मृति-सग्रह से कुछ भी खोता नही है।

बस विस्मृत ही होता है और पुन स्मरण किया जा सकता है।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त अनुमान नही है, वरन् ऐसे ही पुन स्मरणो की अनुभूत निष्पत्ति है।

इसीलिए तो दो-तीन दिन में तू इतनी निकटता अनुभव कर सकी—अन्यथा दो-जन्मो-मे-भी तो निकटता नही जन्मती है।

१७-२-१९७१

[प्रति . सौ० साधना बेलापूरकर, पूना]

६१/आनन्द के आँसुओं से परिचय

प्यारी साधना,

प्रेम । आँसू दुख से ही तो नही आते है ?

आनन्द के भी आँसू है ।

असल मे कोई भी भाव अतिरेक मे हो तो आँसुओ से बहने लगता है ।

लेकिन चूँकि साधारणत हमने केवल दुख का ही अतिरेक जाना होता है, इसलिए आँसू दुख के पर्यायवाची बन जाते है ।

पर अब उस भ्रांति को तू छोड ।

और खुशी से रो क्योकि, तेरी आँखें खुशी के आँसुओ से परिचित हुई हैं ।

१७-२-१९७१

[प्रति सौ० साधना बेलापूरकर, पूना]

६२/प्रभु-प्रेम को पागल मानने वाले लोगों से

प्रिय आनन्द विजय,

प्रेम। लोग तो पागल समझेंगे ही।

वह उनकी सदा की परपरा है।

पागलखाने मे स्वस्थ होना जैसे खतरनाक है, वैसे ही दुखी लोगो मे आनदित होना है।

पर बाँटो आनन्द को—जो पागल कहे उन्हे भी आनद दो—प्रेम दो।

वे समझेंगे—लेकिन देर से।

वह भी उनकी सनातन रीति है।

फिर उनका कोई कुसूर भी तो नही है—आँखे है बन्द इसलिए प्रकाश दिखाई नही पडता है।

और इसलिए जो कहता है कि उसे दिखाई पडता है—वह स्वभावत पागल है।

यह उनकी आत्म-रक्षा का उपाय (Defence Measure) है।

दया के योग्य है वे।

उनके लिए प्रभु से प्रार्थना करो।

१७-२-१९७१

[प्रति स्वामी आनन्द विजय, जबलपुर]

६३/हृदय है अन्तर्द्वार—प्रभु-मंदिर का

प्रिय भगवती,

प्रेम। जो मिल रहा है उसे अनुग्रह से स्वीकार कर।

आनन्द मिले तो भी मन सदेह करता है।

मन सदेह के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

हृदय जब अमृत की वर्षा मे स्नान करता है, तब भी मन सदेह उठाये चला जाता है।

मन पर से ध्यान (Attention) हटा ले और हृदय पर ध्यान को जमा।

नाच और गा—हृदय के साथ।

धन्यवाद के भाव में जी।

तेरे लिए यही साधना है।

धीरे-धीरे चेतना (Consciousness) बुद्धि से उतर हृदय मे लीन हो जायेगी।

बुद्धि ससार का द्वार है।

बहिर्गमन का।

हृदय प्रभु-मदिर के द्वार का नाम है।

अन्तर्गमन का।

१७-२-१९७१

[प्रति मा योग भगवती, बम्बई]

६४/पात्रता का बोध—सबसे बड़ी अपात्रता

प्रिय भगवती,

प्रेम। ऐसा ही होता है—जब प्रभु-प्रकाश की झलक मिलती है तो अपनी अपात्रता का बोध होता है।

इसलिए ही तो जो पा लेते है, वे विनम्र हो जाते है।

प्रयास से नही मिलता है प्रभु।

प्रयास से तो बस हमारी प्यास ही जाहिर होती है।

न ही पात्रता से ही मिलता है।

क्योंकि, उसे पाने में पात्रता का बोझ हो तो सबसे बडी अपात्रता है।

१७-२-१९७१

[प्रति मा योग भगवती, बम्बई]

६७/प्रमाद है भ्रूण-हत्या—विराट संभावनाओं की

प्रिय भगवती,

प्रेम । जानता हूँ कि तू जो कहना चाहती है, वह नही कह पाती है ।

लेकिन, इससे चिन्तित न हो क्योकि जो तू नहीं कह पाती है, वह भी मैं सुन पाता हूँ ।

जो तेरे भीतर घटित हो रहा है, वह मुझे अज्ञात नही है ।

उसकी खबर तुझसे भी पहले मुझे मिल जाती है ।

जबी मे भी वृक्ष को मै देख पाता हूँ ।

आज में भी कल की छायाएँ मैं पकड पाता हूँ ।

वे फूल जो तुझमें खिलेंगे उनके रग मेरे सामने है और उनकी सुवास की सूक्ष्म-यात्रा को मै अभी भी अनुभव कर रहा हूँ ।

जो आज वास्तविक है उसे देखकर मै सन्यास नही देता हूँ—मै सन्यास देता हूँ सभावनाओ को ।

और तेरी सभावना विराट है ।

लेकिन, यह जानकर प्रमाद में मत पड जाना ।

क्योकि, प्रमाद बडी से बडी सभावनाओ की भ्रूण-हत्या बन जाता है ।

१७-२-१९७१

[प्रति मा योग भगवती, बम्बई]

८८/चाह और अपेक्षा है जननी दुख की

प्रिय योग तरु,

प्रेम । अपेक्षा दुख की जननी है ।

जीवन से कुछ मागा कि दुख आया ।

मांग दुख के अतिरिक्त और कुछ भी नही लाती है ।

उसके जाल मे दुख ही फसता है ।

आशा की सुख की और परिणाम है दुख ।

इसलिए जो जानते हैं वे मागते ही नही है ।

अपेक्षा को मर जाने दो ।

अन्यथा अपेक्षा तुम्हे मार डालेगी ।

जिसे हम साधारणत जीवन कहते हैं, वह ऐसा ही क्रमिक आत्मघात है।

जागो और इस आत्मघात से ऊपर उठो ।

जरा-सा ही ऊपर उठना है चाह के और आनन्द के द्वार खुल जाते हैं ।

और मै जानता ही नही, वरन् आश्वस्त भी हूँ कि तुम चाह के ऊपर उठ सकती हो ।

आलस्य के अतिरिक्त और कोई बाधा नही है ।

१७-२-१९७१

[प्रति मा योग तरु, बम्बई]

६७/रूपान्तरण के पूर्व की कसौटियां

प्रिय योग तरु,

प्रेम । रूपान्तरण की घडी मे ऐसा सदा ही होता है ।

हजार परीक्षाये द्वार पर खडी हो जाती है ।

प्रसन्नता से परीक्षाये दो ।

परीक्षा मित्र है ।

क्योकि, उससे गुजरकर ही साक्षात्कार सभव है ।

परीक्षा को शत्रु मत समझ लेना ।

उसे साधना का अग ही जानो ।

उसमें स्वय को कसो और परखो ।

अग्नि से गुजरो और भय जरा भी मन मे न लाओ, क्योकि जो जल जायेगा जानना कि वह कचरा था और जो बच जाये वही तुम हो—वही स्वण है ।

१७-२-१९७१

[प्रति मा योग तरु, बम्बई]

६८/ज्ञानी का शरीर भी मंदिर हो जाता है

प्यारी मृणाल,

प्रेम ! पूछा है तूने कि ज्ञानेश्वर के समाधिस्थ होने के समय निवृत्तिनाथ, सोपानदेव और मुक्ताबाई दु ख से कातर क्यो हो उठते हैं जबकि वे सभी आत्मज्ञानी थे ?

पागल ! आत्मज्ञान व्यक्ति को पत्थर तो नहीं बनाता है ?

आत्मज्ञान तो और गहरी सवेदन-शीलता (Sensitivity) से भर देता है।

निश्चय ही फिर मृत्यु नही रह जाती है।

लेकिन, विदा-बेला मे आसुओ के अतिरिक्त और कुछ भेट भी तो नही किया जा सकता है ?

आत्मा के लिए तो आत्मज्ञानी नही रोयेगा—लेकिन शरीर भी क्या कम प्यारा है ? शरीर है मदिर।

और फिर ज्ञानेश्वर का शरीर तो है महा-मदिर।

यह मदिर तो सदा के लिए खो रहा है—जिसमे वास था अमृत का, अमूर्त का, वह सदा के लिए तिरोहित हो रहा है और ऐसे क्षण में निवृत्तिनाथ का सोपानदेव या मुक्ताबाई न रो पाते तो ही आश्चर्य था !

उनका दु ख सहज है।

अदुख असहज होता।

और आत्मज्ञान कुछ भी करता है तो सहज कर जाता है।

सहजता ही आस्तिकता है।

१७-२-१९७१

[प्रति सौ० मृणाल जोशी, पूना]

६०/भेद है अज्ञान में

प्यारी मृणाल,

प्रेम ! माना कि देह क्षणभगुर है।

फिर भी है तो प्रभु-प्रसाद ही न ?

क्षण में भी तो वही है—क्षण-भगुर मे तो वही है।

क्षण मे भी शाश्वत है।

कण में भी अनादि-अनत है।

और जब ऐसा ज्ञात होता है तो सब भेद गिर जाते है—क्षण के, शाश्वत के, अणु के, विराट के।

भेद है अज्ञान मे।

ज्ञान अभेद है।

ससार और मोक्ष भी ज्ञान में दो नही है।

पदार्थ और परमात्मा भी परम-सत्ता में एक ही है।

१७-२-१९७१

[प्रति सौ० मृणाल जोशी, पूना]

७०/जीवन सत्य की ओर केवल मौन इशारे सम्भव

प्रिय कृष्ण कबीर,

प्रेम। खुश हूँ जानकर मेरे इशारे तुम समझ पा रहे हो।

जो भी जीवन में सत्य है, उसकी ओर केवल इंगित ही किये जा सकते हैं।

वे भी प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष ही।

शब्द में नहीं, मौन में ही।

१७-२-१९७१

[प्रति स्वामी कृष्ण कबीर, अहमदाबाद]

७१/स्वयं रूपान्तरण से गुजर कर ही समझ सकोगी

प्यारी मृणाल,

प्रेम ! बाह्याभिव्यक्ति की समानता से भूलकर भी ज्ञानी और अज्ञानी की अंतर्दशाओं का अनुमान न लगाना।

ज्ञान के विस्फोट के साथ ही अन्तरतम में तो सभी कुछ रूपांतरित हो जाता है—लेकिन बाहर तो सब कुछ वैसा होता है जैसा कि पूर्व में था।

ज्ञानी भी चलता है, पढ़ता है, बैठता है, सोता है—बाहर तो सब वही है लेकिन भीतर जो चलता है, उठता है, बैठता है, सोता है वह अब वही नहीं है।

इस रूपांतरण को समझ पाने के लिए अनुमान (Inference) उपाय नहीं है।

इस रूपांतरण को समझ पाने के लिए तो स्वयं ही रूपांतरण में गुजरना पड़ता है।

अनुमान नहीं अनुभव ही उपाय है।

१७-२-१९७१

[प्रति सौ० मृणाल जोशी, पूना]

७२/ज्ञान की गति है—अनूठी, सूक्ष्म और बेबूझ

प्रिय कृष्ण सरस्वती,

प्रेम । ज्ञान की गति सूक्ष्म है ।

और अक्सर—बेबूझ ।

जो कहा जाता है वही नहीं—अन्ततोगत्वा उसके परिणाम भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं ।

कृष्णमूर्ति का ध्यान आधे सत्य पर ही है—जो कहा जाता है उस पर ही ।

इसलिए, जो वे कहते है, वह ठीक है लेकिन परिणाम अक्सर ही अनुकूल नही होते हे ।

क्योकि, जिनमे कहा जाता है, उसका—उसकी स्थिति का—उसकी व्याख्या का बिलकुल ही ध्यान नही रखा जाता है ।

और मेहेर बाबा जो कहते हैं, वह ठीक नहीं है लेकिन उसके परिणाम अक्सर ही अनुकूल आते हैं ।

क्योकि जिससे कहा जाता है, उसको ही केन्द्र में रखकर कहा जाता है ।

निश्चय ही मेरी कठिनाई दोनो से गहरी है, क्योकि मैं दोनों ही भाँति बोलता और जीता हूँ ।

इसलिए मेरे वक्तव्य साधारणत असगत (Inconsistent) ही होते है ।

और यह मै भलीभाति जानता हू ।

वस्तुत तो वे जान-बूझकर ही सगत है ।

सगत (Consistent) होने का लोभ मैंने नहीं रखा है ।

पूछोगे कारण ?

कारण है · बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ।

कभी मैं सत्य ही बोलता हूँ—निर्वस्त्र नग्न—जैसा है, वैसा ही ।

जिससे बोलता हूँ—उसको ही ध्यान मे रखकर ।

कभी मैं उसके ठीक विपरीत वह भी बोलता हूँ जैसा कि नही है—लेकिन जिसके द्वारा परिणाम मे सत्य और शुभ फलित हो सकता है ।

लेकिन, वह भी जिससे बोलता हूँ—उसको ही ध्यान में रखकर ।

एक कहानी तुमसे कहूँ

किसी सूफी फकीर के पास एक आदमी गया और बोला "मेरी पत्नी बाझ है, आप कुछ चिकित्सा करें।"

वह फकीर प्रसिद्ध चिकित्सक भी था।

फकीर ने स्त्री को देखा और कहा "क्षमा करे, मैं चिकित्सा नही कर सकूँगा। क्योंकि, यह स्त्री किसी भी स्थिति मे चालीस दिन के भीतर मर जायेगी।"

निश्चय ही वह स्त्री खाट से लग गई और मृत्यु के दु ख मे उसने खाना-पीना छोड दिया।

लेकिन, चालीस दिन बीत गये और वह नही मरी।

खुशी में पति ने जाकर फकीर को कहा कि आपकी दुर्भाग्यपूर्ण भविष्यवाणी व्यर्थ गई है।

फकीर ने कहा "वह मैं जानता हू लेकिन अब वह बाझ नही रहेगी—यह भविष्यवाणी मेरी चिकित्सा थी।"

पति ने चकित हो पूछा "चिकित्सा ? यह कैसी चिकित्सा है ?"

फकीर ने कहा "ज्ञान की गति सूक्ष्म है। तुम्हारी पत्नी का मोटापा ही उसके बाझ होने का कारण था। और मृत्यु के भय के अतिरिक्त उसे भोजन से रोकने का और कोई उपाय न था। इसलिए, अब वह स्वस्थ है और बाझपन से मुक्त।"

निश्चय ही ज्ञान की गति सूक्ष्म है।

और उसके मार्ग अनूठे हैं।

१८-२-१९७१

[प्रति स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद]

७३/शुभ आशीषों की शीतल छाया में

प्यारी साधना,

प्रेम। निश्चय ही मैं तेरे साथ हूँ।

और तू जो एकान्त मे मुझसे कहती है, वह मुझे सुनाई पडता है।

कहने के पूर्व थोडी गहरी सासे ले लेना और जो भी कहे उसे कम से कम तीन बार कहना—ठीक एक से शब्दो में।

लिखकर पढे तो और भी ठीक होगा।

और, जोर से बोलकर ही कहना—मन ही मन नहीं।

ठीक ऐसे ही जैसे कि मैं तेरे सामने उपस्थित हू।

ध्यान से क्रमश गहराती चल।

मेरे शुभाशीष प्रतिपल तेरी रक्षा करेंगे।

उनकी शीतल छाया तो तुझे अनुभव हो रही है न?

१८-२-१९७१

[प्रति सौ० साधना बेलापरकर, पूना]

७४/ऊर्जा-जागरण से देह-शून्यता

प्यारी साधना,

प्रेम। ध्यान शरीर की विद्युत-ऊर्जा (Body Electricity) को जगाता है—सक्रिय करता है—प्रवाहमान करता है।

तू भय न करना।

न ही ऊर्जा-गतियो को रोकने की चेष्टा करना।

वरन् गति के साथ गतिमान होना—गति के साथ सहयोग करना।

धीरे-धीरे तेरा शरीर-भान-पोद्गलिक-भाव (Material sense) कम होता जायेगा और अपोद्गलिक ऊर्जा भाव (Non material Energy-sense) बढ़ेगा।

शरीर नही—ऊर्जा—शक्ति ही अनुभव मे आयेगी।

शरीर की सीमा है—शक्ति की नही।

शक्ति के पूर्णानुभव में अस्तित्व (Existence) मे तादात्म्य होता है।

सम्यक् है तेरी स्थिति—अब सहजता से लेकिन दृढता से आगे बढ।

जल्दी ही सफलता मिलेगी।

सफलता सुनिश्चित है।

१८-२-१९७१

[प्रति सौ० साधना बेलापूरकर, पूना]

७८/संन्यास है—मन से मनातीत में यात्रा

प्रिय आनद विजय

प्रेम । संन्यास के लिए मन कैसे-कैसे बचाव खोज रहा था ?

क्योकि, संन्यास मन की मृत्यु जो है ।

पर साहस किया तुमने—उठ सके मन के ऊपर ।

तो जाना वह जो कि परमानन्द है ।

मन है ससार ।

मनातीत है सत्य ।

संन्यास मन से मनातीत में यात्रा है ।

अब जो पाया है उसकी खबर औरो तक भी पहुँचाओ ।

जो जाना है उसे औरो को भी जनाओ ।

अब तो तुम भी उपकरण हो गये प्रभु के ।

अब उसे बोलने दो—तुम उसकी वाणी बनो ।

अब उसे गाने दो—तुम उसकी बाँसुरी बनो ।

१८-२-१९७१

[प्रति . स्वामी आनन्द विजय, जबलपुर]

७६/ध्यान—रूपान्तरण की विधायक खोज

प्रिय आनद विजय,

प्रेम । देखा न कि ध्यान से ही काम-क्रोध विलीन हो जाते हैं ?

अनुभव किया न कि ध्यान से प्रेम-करुणा का जन्म हो जाता है ?

काम-क्रोध से मात्र लडते रहना—समय और शक्ति को खोना है ।

और विक्षिप्तता को आमत्रण भी ।

निषेध मार्ग नही है ।

क्योकि, निषेध निपट दमन है ।

विधेय को—विधायक (Positive) को खोजने से ही आत्म-क्राति घटित होती है ।

१८-२-१९७१

[प्रति स्वामी आनद विजय, जबलपुर]

७७/द्वन्द्व अज्ञान में ही है

प्यारी साधना,

प्रेम । पूछा है तूने, "मन स्थिति सन्यासी की और परिस्थिति गृहस्थी की—इनमें मेल कैसे करे ?"

मेल तू करना ही नहीं—वह कठिन कार्य प्रभु पर ही छोड !

क्योकि, वह ऐसे मेल करने मे कुशल भी है और अनुभवी भी ।

ससार और स्वय का भी उसने मेल किया है—शरीर और आत्मा का भी ।

उसके लिए तो जैसे कही द्वन्द्व है ही नही ।

द्वन्द्व अज्ञान में ही है ।

ज्ञान में द्वन्द्व नहीं है ।

इसलिए, अज्ञान मे मेल बिठाना पडता है फिर भी बैठता नही—बैठ सकता ही नही ।

और ज्ञान मे मेल बैठ ही जाता है क्योकि विपरीत सभव ही नही है ।

तू मेल बिठाने में मत पडना—अन्यथा स्थिति और भी बेमेल हो जायेगी ।

तू बेमेल को स्वीकार कर ले और प्रार्थना पूर्वक जीती चल ।

फिर किसी दिन पायेगी कि बेमेल कही है ही नही ।

स्वीकृति उसकी मृत्यु है ।

१८-२-१९७१

[प्रति . सौ० साधना बेलापूरकर, पूना]

७८/काम-ऊर्जा का रूपान्तरण—संभोग में साक्षीत्व से

प्यारी विमल,

प्रेम। काम-वासना स्वाभाविक है।

उससे लडना नही, अन्यथा उसके विकृत-रूप चित्त को घेर लेंगे।

काम (Sex) को समझो और काम-कृत्य (Sex-Act) को भी ध्यान का विषय बनाओ।

काम में, सभोग मे भी साक्षी (Witness) बनो।

सभोग में साक्षी-भाव के जुडते ही काम-ऊर्जा (Sex energy) का रूपांतरण प्रारंभ हो जाता है।

वह रूपान्तरण ही ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य काम का विरोध नही—काम-ऊर्जा का ही ऊर्ध्वगमन है।

जीवन मे जो भी है उसे मित्रता से और अनुग्रह से स्वीकार करो।

शत्रुता का भाव अधार्मिक है।

स्वीकार से परिवर्तन का मार्ग सहज ही खुलता है।

शक्ति तो सदा ही तटस्थ है।

वह न बुरी है, न अच्छी।

शुभ या अशुभ उससे सीधे नही—वरन् उसके उपयोग से ही जुडे है।

१८-२-१९७१

[प्रति श्रीमती विमला सिंहल, अब मा योग विभूति, नीमच, म० प्र०]

७९/आत्म-सृजन का श्रम करो

प्रिय दीपक,

प्रेम। भय न करो।

उतनी शक्ति श्रम में लगाओ।

भय आत्मघात है।

श्रम आत्म-सृजन है।

श्रम करो और फल प्रभु पर छोड़ो।

फल की चिन्ता श्रम की कमी से पैदा होती है।

श्रम हो पूरा तो फल की बात ही भूल जाती है।

और श्रम हो पूरा तो फल तो सदा आता ही है।

१८-२-१९७१

[प्रति श्रीयुत दीपक कुमार दीक्षित, १२/३४६, बेलासिस ब्रिज, तारदेव, बम्बई-३]

८०/मन का भिखमंगापन

प्रिय योग तरु,

प्रेम । और ज्यादा की मांग ही भिखमगापन है ।

इसलिए तो अक्सर ही एक चमत्कार घटित होता है कि भिखारियो मे भले सम्राट मिल जावे लेकिन सम्राटो मे सम्राट नही मिलते है ।

जुन्नैद के चरणो मे किसी ने पाँच सौ स्वर्ण अशर्फियाँ लाकर भेंट की ।

जुन्नैद ने भेंट कर्त्ता से पूछा "इस धन के अतिरिक्त और भी धन है तुम्हारे पास ?"

उस आदमी ने प्रसन्नता से कहा "यह तो कुछ भी नही है—मेरे पास अनगिनत अशर्फियाँ हैं ।"

जुन्नैद ने पुन पूछा "क्या तुम्हे और भी सपदा की आकाक्षा है ? (Do you desire more ?)"

उस आदमी ने कहा 'निश्चय ही—इतने से धन से हो ही क्या सकता है ?"

जुन्नैद ने उस दीन-दरिद्र की तरफ दया से देखा और कहा . "तब फिर इन पाँच सौ अशर्फियो को तुम्ही रखो क्योंकि तुम्हे मेरी बजाय उनकी ज्यादा जरूरत है ! (Then you must keep this money, for you are more in need than !)"

जुन्नैद के कपडे जगह-जगह से फटे थे ।

उसके पास ही उसका भिक्षा-पात्र रखा था ।

लेकिन, उसके फटे कपडो के भीतर से जो झाँक रहा था, उसके समक्ष कुबेर की शान कुछ भी न थी और सोलोमन के खजाने बेरौनक थे ।

१८-२-१९७१

[प्रति . मा योग तरु, बम्बई]

८१/स्वयं का मिटना ही एकमात्र तप है

प्रिय कृष्ण सरस्वती,

प्रेम ! शुक्ल पक्ष शुरू हुआ था—चाद धीरे-धीरे पूर्णिमा की ओर बढ रहा था।

और चाद के बढने के साथ ही सूफी फकीरो के नृत्य की गति बढ़ती जाती थी।

पूरे चाद के हो जाने तक वे रोज रात्रि नाचने वाले थे।

किसी अलौकिक मदिरा मे जैसे वे डूबे थे।

वे शायद नाचते नही थे—प्रभु ही उन्हे नचा रहा था !

या, प्रभु ही उनसे नाच रहा था।

वैसे दोनो बातें एक ही अर्थ रखती हैं।

स्वय में मिटे बिना कोई स्वय को प्रभु में छोडता हो कहाँ है ?

एक व्यक्ति ने आकर पूछा "क्या मैं भी इस नृत्य मे सम्मिलित हो सकता हूँ ?"

सूफिया के प्रधान ने कहा " 'मैं' के रहते कैसे सम्मिलित हो सकोगे ? फिर यह नृत्य नही जीवन हैं—नृत्य नही, अस्तित्व है। और फिर इसमे सम्मिलित होने के पूर्व परीक्षा भी तो आवश्यक है ?"

उस आदमी ने पूछा "कैसी परीक्षा ?"

फकीर ने कहा "पहले तीन दिन का पूर्ण उपवास करो। फिर स्वादिष्ट भोजन रखना स्वय के सामने और फिर नृत्य और भोजन मे चुनाव करना। यदि फिर भी तुम नृत्य को चुन सको तो हम तुम्हारा स्वागत करेंगे।"

निश्चय ही तप के बिना नृत्य कहाँ ?

तप के बिना गति कहाँ—गान कहाँ ?

तप के बिना सुर कहाँ—सगीत कहाँ ?

१९-२-१९७१

[प्रति स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद]

८२/वही दे सकते हैं—जो कि हम हैं

प्रिय कृष्ण सरस्वती,

प्रेम। हम वही देते हैं और दे सकते हैं जो कि हमारे पास है।

या और भी गहरे खोजें तो केवल वही जो हम हैं।

स्वय के अतिरिक्त और कुछ भी दिया नही जा सकता है।

इसलिए, जो भी हम देते है क्रोध या करुणा, घृणा या प्रेम—वही हमारी प्रतिमा है—वही हम हैं।

ईसा गुजरते थे एक गाँव से।

कुछ लोगो ने उन्हे गालियाँ दी—बेहूदी, अशिष्ट, अभद्र।

अशिष्ट और अभद्र इसलिए कहता हूँ—क्योंकि, शिष्ट और भद्र गालियां भी हैं।

ईसा ने गालियाँ सुनी और प्रत्युत्तर मे उन सबके लिए प्रभु से प्रार्थना की।

एक व्यक्ति ने ईसा से कहा "यह क्या कर रहे है ? प्रार्थनाएँ गालियो के उत्तर मे ?
ऐसा लेन-देन कभी देखा नहीं ?"

ईसा ने कहा "लेकिन मैं वही तो खर्च कर सकता हू न जो कि मेरी गांठ में है ?

(I could spend only of what I had in my purse)

१९-२-१९७१

[प्रति स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद]

८३/स्वर्ग और नर्क—एक ही तथ्य के दो छोर

प्रिय योग तरु,

प्रेम। मनुष्य की आकांक्षाएँ आत्मघाती हैं।

वह चाहता है, कि दुख न रहे लेकिन किस लिए ?

इसलिए कि सुख ही सुख शेष रहे।

लेकिन उसे पता नहीं है कि दुख गया कि सुख भी गया।

नर्क को मिटाकर स्वर्ग को कौन नहीं बचा लेना चाहता है ?

लेकिन बिना यह जाने कि वे दोनों एक ही तथ्य के दो छोर हैं।

बचते हैं तो साथ   जाते हैं तो साथ।

स्वर्ग को जिसने चाहा, उसने नर्क को निमंत्रण भेजा।

जीवन को पकड़ा जोर से कि मृत्यु हाथ में आयी।

अत्तार कहा करता था कि पूछा किसी ने चाँद से कि "तेरी सबसे बड़ी और एकमात्र आकांक्षा क्या है ? (What is your strongest desire ?)"

चाँद ने कहा कि "सूर्य न रहे। (That the sun should vanish)"

अब कौन समझाये चाँद को कि पागल! सूर्य के बिना तू भी नहीं रह सकता है!

१९-२-१९७१

[प्रति . मा योग तरु, बम्बई]

८४/अधैर्य से साधना में विलंब

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम। अधैर्य आत्मघात है।

सत्य की खोज में धैर्य ही मार्ग है।

एक सद्गुरु से किसी ने पूछा "मै यदि प्रतिपल आपकी आज्ञा का पालन करूँ तो सत्य की खोज कितने समय मे पूरी हो सकेगी?"

सद्गुरू ने कहा "१० वर्ष कम—से कम।"

उस व्यक्ति ने साश्चर्य कहा १० वर्ष?—लेकिन इतना धैर्य मैं न रख सकूगा। मान ले कि मै दो गुना श्रम करू—रात दिन आपके पास ही रहूँ तो कितना समय लगेगा?

सद्गुरु ने कहा "२० वर्ष—कम से कम।"

उस व्यक्ति ने चौककर कहा· "यह क्या कहते है? पहले आपने ही कहा था दस वर्ष! और अब जबकि मै दो गुना श्रम करने को तैयार हूँ तब आप ही कहते है २० वर्ष—आपने तो दो गुने श्रम के साथ समय भी दो गुना कर दिया! यह कैसा गणित है? शायद आप मुझे समझे नही—मै सकल्प करता हू कि मैं श्रम करने मे कुछ भी छोड न रखूगा—स्वय को पूरा ही दाँव पर लगा दूँगा—आपकी आज्ञा ही मेरा जीवन होगी पर ठीक से बतावे कि समय कितना लगेगा?"

सद्गुरु ने कहा "३० वर्ष—कम से कम। **क्योंकि जो शिष्य इतनी शीघ्रता में है, वह इतने ही आहिस्ते सीख पाता है।** (*A pupil in such a hurry learns slowly*)"

१९-२-१९७१

[प्रति स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

८५/नासमझदारों की समझ

प्यारी मौनू,

प्रेम। एक सूफी फकीर गुजरता था किसी नगर से।

तपते सूर्य और रेगिस्तानी यात्राओ ने उसके चेहरे को काला कर दिया था।

जिसको उसे खोज थी, वह तो मिलता नहीं था यद्यपि वह स्वय रोज-रोज जरूर खोता जाता था।

उसकी आँखें सदा ही अज्ञात को खोजती रहती और उसके हाथ सदा ही अज्ञात को टटोलते रहते।

उस फकीर को किसी व्यापारी ने देखा और उसके रग-ढग को देख सोचा कि जरूर ही वह किसी का खो गया गुलाम है।

आदमी स्वय से ज्यादा और स्वय के पार तो कभी सोच ही नहीं पाता है न ?

वह व्यापारी स्वय ही हजार तरह की गुलामियो से घिरा था—यद्यपि मानता था स्वय को कि अपना मालिक है।

अपना ही क्यो—औरो का भी ?

गुलाम सदा ही ऐसा मानते हैं।

उस व्यापारी ने फकीर से पूछा "क्या तुम किसी के गुलाम नही ?

("Are you not a slave ?")

फकीर तो गुलाम था ही प्रभु का।

उसने आनन्द से कहा जरूर हूँ ! "(That-I am) !"

व्यापारी ने पूछा "और तुम्हारा नाम ?"

फकीर स्वय को ही भूलता जा रहा था—सो उसे नाम याद न आया।

व्यापारी ने कहा "कोई हर्ज नही—स्मृति तुम्हारी कमजोर मालूम पडती है—लेकिन तुम्हारे विनम्र स्वभाव के कारण मै तुम्हे 'खैर' (शुभ Good) कहकर पुकारूँगा !"

जिन्हें स्वय का कोई भी स्मरण नही है, वे स्वय के नाम को जानने को ही स्मृति (Remembering) कहते है !

हालांकि, जिन्हे स्वय का स्मरण करना है, उन्हे स्वय के सबध में सब कुछ—सब नाम-धाम—पता-ठिकाना भूल जाना पडता है !

अंतत उस व्यापारी ने कहा "उठो! चलो! मेरे साथ—जब तक कि मैं तुम्हारे मालिक को खोज लूँ तब तक तुम मेरे साथ रह सकते हो और मेरा काम कर सकते हो?"

फकीर हँसा और बोला "मैं आपकी कृपा से अत्यन्त अनुगृहीत हूँ और कृपा करके जरूर ही मेरे मालिक को खोजने में मेरी सहायता करें क्योंकि, मैं कितने लम्बे समय से उसे खोज रहा हू और अब तक नही खोज पाया हू!" (I would like that I have been seeking my MASTER for such a long time!)

आदमी-आदमी की भाषा अलग है।

और धार्मिक व्यक्ति और अधार्मिक व्यक्ति की भाषाओं में तो कोई भी ताल-मेल नहीं होता है।

पर शब्द तो वे ही हैं और इसलिए उलझनों का कोई अन्त ही नहीं है।

१९-२-१९७१

[प्रति मा योग क्रांति, जबलपुर]

८६ आदमी ऐसा ही जीता है—तिरछा-तिरछा

प्रिय कृष्ण सरस्वती,

प्रेम। एक सूफी दरवेश ने किसी द्वार पर भिक्षा के लिए प्रार्थना की।

गृहपति ने उसकी ओर देखे बिना ही कहा . "क्षमा करें—किन्तु घर में कोई है नही।"

फकीर हँसा और बोला "लेकिन, मैं किसी को कहाँ मागता हूँ—मैं तो सिर्फ भोजन ही मागता हूँ।"

इस बार गृहपति ने चौककर फकीर की ओर देखा।

लेकिन फिर भी कहा "मैं समझा—पर भोजन देने के लिए ही तो कोई आदमी घर में नही है?"

फकीर पुन हँसा और बोला : "महानुभाव! आदमी घर में नहीं है?—फिर आप कौन हैं?—आदमी नही?"

गृहपति उठा और भोजन लेकर आया।

पर फकीर ने भोजन लेने से इकार कर दिया और कहा "मैं भलीभाति समझ गया था कि भोजन आपको नही देना है पर यही बात मैं आपसे सीधी-सीधी सुनना चाहता था।"

आदमी ऐसा ही जीता है—तिरछा-तिरछा।

जो कहना है—वही नहीं कहता यद्यपि उसे ही और-और तरह से कहना चाहता है।

जो करता है—वही नहीं करता यद्यपि उसे ही पीछे के मार्गों से करना पडता है।

जो होता है—वही नहीं होता है यद्यपि उसके अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता है।

२०-२-१९७१

[प्रति स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद]

८७/समग्रता से किया गया कोई भी कर्म अतिक्रमण बन जाता है

प्रिय योग लक्ष्मी,

प्रेम। जो भी हो यदि पूरे हृदय मे हो तो ही परिणाम आता है।

अधूरे मन से चलने वाला चले कितना ही पहुँचता कहीं भी नहीं है।

गलती भी पूरे हृदय से की जाये तो गलत नही है क्योंकि तब उसके पार हो जाना सहज ही सम्भव हो जाता है।

और ठीक करना भी अधूरा है तो ठीक नही है क्योंकि अधूरे कृत्य करने वाले व्यक्ति को भी खंड-खंड कर जाते हैं।

एक दिन उमर यहूदी धर्म-शास्त्र पर ऐसी ही सरसरी नजर डालता था तो मुहम्मद ने उससे कहा "ऐसे सरसरी नजर डालने से कोई फायदा नही है। यदि कुछ पाना है इस धर्मशास्त्र से तो तुम्हे पूरे अर्थों मे यहूदी होना पड़ेगा। और अधूरे मुसलमान मे पूरा यहूदी होना सदा ही बेहतर है। असल मे कुछ भी पूरा होना बेहतर है।"

२०-२-१९७१

[प्रति मा योग लक्ष्मी, बम्बई]

८८/चाह से मुक्ति ही मोक्ष है

प्रिय योग लक्ष्मी,

प्रेम। परमात्मा ने आत्माएँ बनायी और उनके सामने नर्क लाया गया और उनसे कहा गया कि जो नर्क चुनना चाहे वे नर्क मे प्रवेश कर जावें—पर नर्क कौन चुने—सभी ने मुँह फेर लिया।

फिर लाया गया ससार और ९० प्रतिशत आत्माएँ ससार मे प्रवेश कर गयी।

परमात्मा हँसा क्योंकि ससार नर्क के ही मुख्य द्वार का नाम है।

फिर लाया गया स्वर्ग।

जो आत्माएँ शेष बची थी उनमें से भी ९९ प्रतिशत स्वर्गमे प्रवेश कर गयी।

परमात्मा और भी जोर से हँसा।

क्योंकि स्वर्ग नर्क का ही विशेष द्वार है।

फिर पीछे तो अगुलियो पर गिनी जा सकें इतनी ही आत्माएँ शेष बची।

परमात्मा ने उनसे पूछा "तुम्हारे क्या इरादे है ? तुम्हे कहाँ जाना है ?"

उन आत्माओ ने कहा "जो आपकी मर्जी। जहाँ भेजे—वही हमारा स्वर्ग है।"

परमात्मा ने कहा "नर्क भेजूँ तो ?"

उन आत्माओ ने कहा "आपके द्वारा मिला नर्क भी स्वर्ग है—स्वय के अज्ञान और अहकार में चुना स्वर्ग भी नर्क।"

परमात्मा ने आँखे बन्द की और बहुत सोचा और फिर मोक्ष का निर्माण किया उनके लिए जिन्होने कि पूर्ण समर्पण का साहस किया था।

इसलिए ही मैं कहता हूँ छोडो स्वय को—छोडो चुनाव को—छोडो चाह को।

क्योंकि सब चुनाव—सब चाहें नर्क के ही भिन्न-भिन्न द्वार है।

और जब भी किसी को चाह पकडती है तभी वह बधन को चुन लेता है।

मुक्ति—पूर्ण-मुक्ति तो केवल उन्ही के लिए है जो कि चाह से ही मुक्त है।

चाह से मुक्ति ही मोक्ष है।

२०-२-१९७१

[प्रति मा योग लक्ष्मी, बम्बई]

८९/अन्तर अभीप्सा ही निर्णायक है

प्यारी धर्म ज्योति,

प्रेम । एक रात्रि किसी सम्राट ने स्वप्न देखा और स्वप्न में देखा कि उसका एक परिचित सम्राट स्वर्ग मे है और उसका ही एक परिचित सत नर्क में ।

स्वभावतः ही चकित हुआ वह सम्राट ।

और स्वप्न मे ही पूछ बैठा "इसका अर्थ क्या है ? यह उल्टी स्थिति क्यो है ?"

एक अज्ञात आवाज ने प्रत्युत्तर मे कहा "सम्राट स्वर्ग में है क्योकि वह सदा सतो को खोजता रहा और सत्सग को ! और सत नर्क में है क्योकि, उसने अपने पूरे जीवन में सिवाय सम्राटों को खोजने के और कुछ भी नही किया ।"

२०-२-१९७१

[प्रति मा धर्म ज्योति, बम्बई]

१०/सत्य की खोज : लबी यात्रा, अशेष यात्री

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम । यात्रा है पर्वतीय ।

गिराने को बहुत खाई-खड्ड है ।

भटकने-भटकाने को बहुत-से भ्रात मार्ग हैं ।

आलस्य से भरा जीवन है ।

नीचे फिसलने की वृत्तियो को सदा-सदा छिपाये बैठा मन है ।

अनत-अनत जन्मो की जड हो गयी आदतें है ।

सस्कारो की गले से बधी चट्टानें हैं ।

कर्मों की हाथ-पैरो मे पडी जजीरें हैं ।

एक साधु से किसी ने पूछा "सत्य का मार्ग क्या है ?"

साधु सूर्य के प्रकाश में स्नान करते, सामने ही फैले पर्वत की शृखलाओं को देखने लगा ।

लेकिन बोला कुछ भी नहीं ।

उस व्यक्ति ने पुन पूछा "मार्ग क्या है ? (What is the WAY ?)"

साधु ने कहा "कैसा सुन्दर है यह पर्वत ! (What a fine mountain this is !"

उस व्यक्ति ने साश्चर्य कहा "किंतु मैं पर्वत के सबध मे नहीं—पथ के सबध मे पूछता हूँ ? (I am not asking you about the mountain, but about the WAY ?)

साधु हँसा और बोला "बेटे ! लेकिन जब तक तुम पर्वत के पार नहीं हो जाते हो तबतक मार्ग को भी नहीं पा सकते हो ! (So long as you cannot go beyond the mountain, my son, you can not reach the WAY !)"

निश्चय ही पार करना है पर्वतो को ।

और फिर निराश होने का कोई भी कारण नहीं है ।

क्योंकि पार करने वाला सदा ही पर्वतो से बड़ा है ।

२२-२-१९७१

[प्रति स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

९१/अज्ञात को ज्ञात से समझने की असफल चेष्टा

प्यारी दुर्गा,

प्रेम। अज्ञात को ज्ञात से समझने की चेष्टा स्वाभाविक है।

लेकिन, ऐसी चेष्टा सदा सही नहीं होती है।

फिर थोड़ा धैर्य रखती तो ऐसी भूल में न पड़ती।

इतना अधैर्य ?

निर्णय लेने की इतनी जल्दी ?

अतीत के अनुभवों से भविष्य की व्याख्या ?

काम-ऊर्जा (Sex-Energy) का ही रूपांतरण है ध्यान।

फिर तेरे आभा-मंडल में स्पष्ट जो लक्षण हैं उनसे कभी भी जरा-सी भूल से मस्तिष्क निष्क्रिय हो सकता है या स्मृति-नाश हो सकता है।

तेरी आंखें गहरी आतरिक रिक्तता की सूचक है।

जो कि और भी बढ़ सकती है।

ऐसी किसी कठिनाई में तू न पड़े इसलिए इतना समय तुझे दिया और उसके लिए तूने जो अनुग्रहपूर्ण पत्र लिखा है उससे सच ही मैं आनंदित हूँ।

आह! कैसा सुखद धन्यवाद तूने भेजा है ?

तेरे धन्यवाद को देखते हुए मैं चाहूँगा कि मेरी विधि से तू ध्यान न करे क्योंकि कोई भी जटिलता पैदा हो तो अब तुझे समय देना—तेरे ही कारण—मैं संभव नही देखता हूँ।

लेकिन किसी और विधि से भी ध्यान करने के पहले बहुत सोच-समझकर आगे बढ़ना अन्यथा तू खतरे में पड़ सकती है।

२१-२-१९७१

[प्रति सौ० दुर्गा जैन, बम्बई]

१२/हर पल जीता हूँ पूरा

प्यारी धर्म ज्योति,

प्रेम। सादी ने लिखा है हम एक लबी यात्रा पर थे।

दुरूह था मार्ग और अनेक कष्टो से भरा हुआ।

एक सूफी दरवेश भी हमारे साथ हो लिया—उसके पास न तो एक पैसा ही था, न ही कुछ और।

हम सब तो ऊँटो पर थे, लेकिन वह पैदल ही चल रहा था।

फिर भी उसके आनद का कोई ठिकाना नही था और वह अक्सर कहता था "न मैं ऊँट का बोझ हूँ—न कोई ऊँट ही मेरा बोझ है। न मै किसी का मालिक हूँ, न किसी का गुलाम। न अतीत की चिन्ताएँ मुझे, न भविष्य की। *वर्तमान ही मेरे लिए काफी है। पल-पल ही है मेरा जीवन। हर स्वास लेता हू पूरी—हर पल जीता हू पूरा।"*

लेकिन हम सबके बीच सबसे ज्यादा चिंतित एक व्यापारी ने उसे लौट जाने की सलाह दी।

भविष्य के खतरे बताये।

अतीत की यात्राओ के अपने अनुभव गिनाये।

और उसके न मानने पर उससे यह भी कहा कि तू अपने ही हाथो मौत के मुँह मे जा रहा है—भोजन की कमी और पैदल-यात्रा की थकान तुझे निश्चित ही मार डालेगी।

लेकिन वह फकीर बस हँसता रहा—गीत गाता रहा और आगे बढता रहा।

और फिर यात्रा रोज-रोज कठिन होने लगी।

सबके चेहरे चिंता, दुश्चिताओ की रेखाओं से भर गये।

वह व्यापारी तो बिलकुल विक्षिप्त-सा हो गया।

लेकिन, वह फकीर हँसता रहता और गाता रहता "हर स्वास मैं लेता हूँ पूरी—हर पल मैं जीता हूँ पूरा! (Full I breathe, full I live life)

और फिर तो यात्रा एक-एक पग असभव हो गयी।

उस अनुभवी यात्री की बातें सभी को सही मालूम होने लगी।

वह यात्रा बस एक दुख स्वप्न (Nightmare) ही हो गयी।

पर वह फकीर गीत ही गाता रहा ।

उसके चेहरे की रौनक हर कठिनाई के साथ बढ़ने लगी ।

उसकी आँखों में अलौकिक आनंद के फूल खिलते मालूम होने लगे ।

और एक दिन वह व्यापारी अति-कठिनाइयों के कारण मर गया ।

और उस दरवेश ने व्यापारी की लाश के पास खड़े होकर कहा . प्यारे ! मैं नहीं मरा पद-यात्रा की कठिनाइयों में—और तुम ऊँट की सवारी और सुविधा में भी मर गये ? असल में ना समझ दिन में ही दिये जला लेते हैं और फिर रात्रि में चकित होते हैं कि प्रकाश क्यों नहीं है ! (*Fools burn lamps during the day and, at night they wonder why they have no light !*)"

२१-२-१९७१

[प्रति मा धर्म ज्योति, बम्बई]

१३/जिंदगी तर्क और गणित से बहुत अधिक है

प्रिय कृष्ण सरस्वती,

प्रेम ! तर्क और सत्य एक नहीं हैं ।
न ही गणित और जीवन ही एक हैं।
दो पक्षियो को बाँध दो एक साथ ।
अब उनके पास दो गुने पख हैं ।

निश्चय ही अब उन्हे उडने मे सुविधा होनी चाहिए ।
दो गुनी शक्ति से वे उड सकते हैं ।
या, दो गुने फासले को पार कर सकते हैं ।
पर वस्तुत: वे उडेंगे ही नहीं—क्योकि उड ही न सकेंगे ।
क्योंकि, गणित और जिन्दगी एक नहीं हैं ।
क्योंकि, तर्क और सत्य एक नहीं हैं ।

२१-२-१९७१

[प्रति : स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद]

९४/जीवन की धन्यता है—अभिव्यक्ति में—स्वयं की, स्व-धर्म की

प्रिय कृष्ण करुणा,

प्रेम । स्वय की पूर्णाभिव्यक्ति ही आनद है ।

अनभिव्यक्त व्यक्तित्व ही अनत मनस-रोगों का स्रोत है ।

जामी ने लिखा है

एक कवि चिकित्सक के पास गया और बोला "न मालूम कैसे-कैसे रोग मुझे पकड रहे है ? मै बहुत दु खी और पीडित हूँ—शरीर मेरा ऐसे टूटता है कि जैसे बुरी तरह पीटा गया हो ?"

चिकित्सक ने कवि की नाडी नहीं देखी—वरन् झाका उसकी आँखो में ।

और फिर कहा उस कवि से "क्या यह सच नही है कि तुमने अपना नवीनतम गीत अब तक किसी को गाकर नही सुनाया है ?"

कवि के चेहरे से जैसे अचानक रात हट गई ।

और उसकी आँखो में भोर की ताजगी नाचने लगी ।

और उसने कहा "यह बिलकुल ही सत्य है !"

चिकित्सक ने कहा "फिर पहले मुझे ही सुनाओ ! कृपा करो और सबसे पहले मुझे ही सुनाओ !"

कवि गीत गाने लगा ।

बीमार पता नही कहाँ खो गया ?

वह रुग्ण शरीर स्वस्थ दिखाई पडने लगा ।

वे शिथिल अग गीत-पक्तियो के साथ नवजीवन से भरने लगे । वह टूटता शरीर गीत की लयो मे मदहोश हो झूमने लगा ।

और चिकित्सक की प्रार्थना पर बार-बार कवि ने अपना गीत दुहराया ।

और हर बार गीत उसे और भी प्राणवान कर गया ।

और जब आधी रात गये चिकित्सक ने कवि को विदा दी तो कवि को स्मरण ही नही था कि वह चिकित्सक के पास किसलिए आया था ।

मनुष्य आज अधिकांशतः ऐसा ही रुग्ण है।

जीवन है अभिव्यक्ति स्वयं की—स्व-धर्म की।

जीवन मिलता नहीं है बना-बनाया।

और मिलता है तो रुग्ण और बासा और मुर्दा मिलता है।

जीवन को करना होता है सृजन—रोज-रोज—पल-पल।

जो अनभिव्यक्त संभावनायें भीतर अटक जाती हैं, वे ही बन जाती हैं रोग।

और हम समझते हैं कि जीवन सिर्फ आहार है—लो और लो—बस सब कुछ स्वयं के भीतर डालते चलो।

बच्चे जैसे स्वयं को बस मुँह ही समझते हैं ऐसी ही बचकानी (Juvenile) अधिकांश मनुष्यों की स्थिति है।

जबकि जीवन के गहरे अर्थ दान में ही प्रगट होते हैं।

लेने में नहीं—देने में ही जीवन शिखरानुभूतियों (*Peak Experiences*) को उपलब्ध होता है।

और दान—स्वयं का अशेष दान जहाँ है वहीं है अभिव्यक्ति। ऐसी अभिव्यक्ति में ही स्वास्थ्य है।

२१-२-१९७१

[प्रति : माँ कृष्ण करुणा, बम्बई]

९८/सम चित्त में अद्वैत स्वरूप का बोध

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम। निश्चय ही एक ऐसी चित्त-दशा है जहाँ सब समान हो जाता है।

शायद उस दशा को चित्त-दशा कहना ठीक नही, क्योंकि सम होते ही चित्त खो जाता है।

क्योकि विषम होना ही चित्त है।

और शायद उस दशा को दशा कहना भी ठीक नही है, क्योकि चित्त के विषम ज्वर के खोते ही—या चित्त के खोते ही दशायें भी खो जाती हैं।

फिर तो जो शेष रह जाता है वह स्वरूप है।

दशायें आती हैं, जाती है—अनित्य होना ही उनका होना है।

स्वरूप न आता, न जाता—स्वरूप अर्थात् वह जो नित्य है—स्वरूप अर्थात् वह जिस पर दशाये आती है और जाती है लेकिन जो स्वय सदा-सदैव वही है जो है।

स्वरूप में सभी प्रश्नो का एक ही उत्तर है।

स्वरूप मे सभी समस्याओ का एक ही समाधान है।

क्योंकि, स्वरूप अद्वैत है।

जोशु (Joshu) से दो भिक्षु मिलने आये थे।

उनमे से एक से जोशु से पूछा "क्या मैंने पहले भी तुम्हे यहाँ कभी देखा है ? (Have I ever seen you here before ?)

उस भिक्षु ने कहा "जी नही! महानुभाव! (No, Sir, you have not)"

जोशु ने कहा "तब एक प्याली चाय पियें! (*Then have a cup of tea*)"

फिर जोशु ने दूसरे भिक्षु से वही सवाल पूछा "क्या मैंने पहले भी तुम्हें यहाँ कभी देखा है ?"

उस दूसरे भिक्षु ने कहा "निश्चय ही महानुभाव! (Yes Sir, of course you have)"

जोशु ने उससे भी कहा : "तब एक प्याली चाय पियें ! (*Then have a cup of tea*)"

फिर बाद में जोशु के आश्रम-व्यवस्थापक भिक्षु ने जोशु से साश्चर्य पूछा "इसका क्या अर्थ है कि आपके प्रश्न का चाहे जो उत्तर हो, आप उत्तर में समान रूप से ही चाय की प्याली भेंट करते हैं ? (How is that you make the some offer of tea whatever is the reply to your question ?)"

इस पर जोशु ने जोर से पुकारा "व्यवस्थापक भिक्षु ! क्या तुम अभी भी यहीं हो ? (Manager are you still here ?)"

भिक्षु ने कहा निश्चय ही ! गुरुदेव ! (Of course, Master !)"

जोशु हँसा और बोला : तब एक प्याली चाय पियें ! (*Then have a cup of tea*)"

२२-२-१९७१

[प्रति स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

९६/संकल्प पूर्ण हुआ कि शून्य हुआ

प्यारी मधु,

प्रेम। ऐसे ही—ठीक ऐसे ही कटते हैं बंधन।

ऐसे श्रम से ही खुलता है द्वार।

ऐसी अथक चेष्टा ही अमृत को खोज पाती है।

संकल्प जहाँ पूर्ण है वहीं संकल्प शून्य हो जाता है।

अर्थात् वही समर्पण है।

और व्यक्ति बुझा कि प्रभु प्रगट हुआ।

दिया बुझा कि सूर्योदय है।

२४-२-१९७१

[प्रति . मा आनंद मधु, आजोल, गुजरात]

९७/साक्षी की प्रत्यभिज्ञा (Recognition) ही ध्यान है

प्यारी योग प्रेम,

प्रेम। मन में सदा ही उतार-चढाव होते रहते हैं।
उससे विचार में मत पडना।
धीरे-धीरे मन के पार जो है, उसके प्रति जाग।
क्योंकि वही स्थिर है।
मन तो परिवर्तन है ही।
लहरो का तल ही मन है।
जरा-सा झोका हवा का और वहाँ चहल-पहल हो जाती है।
लेकिन, उसमें उलझ ही मत।
उसे शांत करने में भी मत पड।
मन की अशांति को भी जो जानता है—देखता है—उसे ही पहचान
उस साक्षी (*Witness*) की प्रत्यभिज्ञा (*Recognition*) ही ध्यान है।

२४-२-१९७१

[प्रति, मा योग प्रेम, आजोल, गुजरात]

V.mru १८ साधना के मार्ग पर शत्रु भी मित्र है

प्रिय योग यशा,

प्रेम । जो बुरा करें उनके प्रति भी मन में सदा करुणा रखना ।

और उनके प्रति अनुग्रह का भाव भी रखना क्योंकि वे करुणा का अवसर देते हैं ।

साधना के मार्ग पर सभी मित्र हैं ।

वे भी जो ऊपर से शत्रु जैसे मालूम होते हैं ।

२४-२-१९७१

[प्रति मा योग यशा, आजोल, गुजरात]

९९/शांत साक्षी-भाव में ही डूब

प्रिय उर्मिला,

प्रेम। इस शात साक्षी-भाव मे ही डूब जाना है।

यही है वह जगह जहाँ नाव डूबे तो किनारा आ जाता है।

२४-२-१९७१

[प्रति श्रीमती उर्मिला सिंह, १०७ रग्बी ग्राउण्ड, जबलपुर]

१००/आदमी की कुशलता—वरदानों को भी अभिशाप में बदलने की

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम । आह ! आदमी भी कैसा अद्भुत है—प्रभुदत्त वरदानो को भी अभिशापो में बदल लेने मे वह कैसा कुशल है ?

जीसस के सबध मे आस्कर वाइल्ड ने एक कहानी लिखी है

जीसस ने एक गाँव में प्रवेश किया ।

एक विशाल भवन से शराब पिये किसी व्यक्ति की आवाजे सुनी ।

वे भवन मे भीतर गये और शराब मे धुत्त उस सुदर कायावाले व्यक्ति के कधे पर हाथ रखकर उन्होने पूछा "यह तुम्हारा कैसा ढग है जीने का ?"

उस व्यक्ति ने आँखे खोली और जीसस को पहचानकर कहा मेरे प्रभु ! मैं तो पहले कोढ़ी था और तुम्हीं ने मुझे स्वस्थ किया और यह स्वर्ण जैसी सुन्दर काया दी—लेकिन अब मैं इस जीवन का क्या करूँ—और इस शरीर का क्या करूँ और इस स्वास्थ्य का क्या करूँ ?"

जीसस चुपचाप उस भवन से बाहर हो गये ।

उनकी आँखो मे गहरी उदासी थी ।

लेकिन बाहर उन्होने एक युवक को एक विक्षिप्त शिकारी की भाँति किसी स्त्री के पीछे भागते देखा ।

उस युवक की आँखो मे वासना की लपटो के सिवाय और कुछ भी नही था । जीसस ने उस युवक को रोका और पूछा "क्या परमात्मा ने आँखे इसलिए दी है ?"

वह युवक मुडा और जीसस को पहचानकर बोला "मेरे प्रभु ! मैं तो अधा था फिर तुम्हीं ने मुझे आँखे दीं । लेकिन अब इन आँखो का मैं और क्या कर सकता हू ?"

जीसस की उदासी और गहरी हो गयी, फिर भी उन्होने उस स्त्री को भी रोका जो कि उस युवक को सब प्रकार से उकसा रही थी और उससे पूछा "क्या पाप के अलावा और कोई मार्ग नही है ?"

वह स्त्री खिलखिलाकर हँसी और बोली 'लेकिन, तुम्हीं ने तो मेरे पाप क्षमा कर दिये थे ? और फिर क्या यह मार्ग सुखमय नहीं है ?'

जीसस फिर उस गाव मे और न ठहर सके।

वे तत्काल गाव के बाहर निकल आये।

लेकिन गाव के बाहर निकलते ही राजपथ के किनारे उन्होने एक व्यक्ति को छाती पीट-पीट कर रोते देखा।

वे रुक गये और उन्होने उस व्यक्ति मे पूछा "तुम रोते क्यो हो? तुम्हारी पीडा क्या है?"

उस व्यक्ति ने सिर ऊपर उठाया और जीसस को पहचानकर कहा "मैं मर चुका था और तुमने ही मुझे फिर से जीवन दिया। अब मैं रोऊ नही तो भला और क्या करू?"

२४-२-१८७१

[प्रति . स्वामी कृष्ण चैतन्य, आजोल, गुजरात]

१०१/गहरा खेल शब्दों का

प्रिय कृष्ण सरस्वती,

प्रेम । शब्दो का भी गहरा खेल है ।

और जो लोग उस खेल को गहन गभीरता से खेलते है, वे ही दार्शनिक (philosophers) है ।

निश्चय ही उस खेल मे मन-बहलाव तो होता है—लेकिन, सत्य की यात्रा नही । इसलिए ही तो दर्शन (Philosophy) न कही पहुँचता है—न कही पहुँचाता है ।

और दर्शनशास्त्र से मुक्त हुए बिना धर्म मे प्रवेश असभव है ।

शब्दो के खेल मे अन्य खेलो से और भी एक रहस्य विशेषता है ।

वह यह कि इसमे कभी कोई हारता नही है ।

न ही कभी कोई जीतता ही है ।

लेकिन, प्रत्येक स्वय को जीता हुआ मानता है !

जान विसडम की एक कहानी तुमसे कहता हूँ ।

दो यात्री एक जगल में से निकले ।

घने जगल के मध्य मे थोडी सी खुली जगह थी जहा कि भाति-भाति के रग-बिरगे फूलो से पौधे लदे थे ।

लेकिन उनके बीच-बीच मे घास-पात भी खूब उगा था ।

एक यात्री आस्तिक था ।

उसने कहा "निश्चय ही इन फूलो की देख-भाल कोई कुशल माली करता है !"

दूसरा यात्री नास्तिक था ।

उसने कहा "कभी नही—क्योकि बीच-बीच मे उगी व्यर्थ की घास-पात इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इन फूलो की देखभाल करनेवाला कोई भी नही है ।"

फिर विवाद बढ गया ।

दोनो ओर से तर्क दिये गये ।

पर कोई परिणाम न आया।

तब उन दोनों ने वहीं तंबू गाड लिये—यह जानने को कि कोई माली है या नही ?

चौबीस घण्टे वे पहरा देते। लेकिन कोई माली दिखाई नही पडा।

तब आस्तिक ने कहा "निश्चय ही माली अदृश्य (Invisible) है।"

तब उसने फूलो के चारों ओर तार बाधे और तारो में बिजली दौडायी, पहरे के लिए शिकारी कुत्ते रखे।

लेकिन, नही—माली का कोई पता नही।

बिजली के तारों को छूकर कभी कोई चीख नही आई।

न ही कुत्ते ही किसी की अदृश्य उपस्थिति से भौके।

तब आस्तिक ने कहा: "माली न केवल अदृश्य है वरन अस्पर्शनीय भी है। माली इन्द्रियातीत है। न केवल इन्द्रियातीत वरन निर्गुण भी है और न केवल निर्गुण वरन निराकार भी है।

नास्तिक ने सुना और हँसकर कहा "यही तो मैं पहले से ही कह रहा हू क्योकि तुम्हारे अदृश्य, अस्पर्शनीय, इन्द्रियातीत और निर्गुण-निराकार माली में और मेरे 'न माली' मे फर्क ही क्या है ?"

२४-२-१९७१

[प्रति स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद]

१०२/पवित्र प्रार्थना—आंसुओं में नहाई

मेरे प्रिय,

प्रेम। रोने मे सकोच न करे।

आसुओं में नहाई प्रार्थना से पवित्र और क्या हो सकता है?

हृदय भर आता है तो आसुओ में उसे बहने दें और प्रभु चरणो तक पहुचने दें।

शब्द नहीं कह पाते है जो, वही आंसुओं से निवेदित होना चाहता है।

२४-२-१९७१

[प्रति श्री रतिलाल भगवान जी वसाणी, एल० सी० वायदाज हाउस, काघास चौक, न्यू इतवारी रोड, नागपुर]

१०३/पीड़ा को भी उत्सव बनालेने की कला

प्यारी तृप्ता,

प्रेम। हृदय को न तो रोक ही—न दबा ही।

आनन्द पूर्वक उसे प्रगट होने दे।

आंसू बहे तो उन्हे भी प्रभु चरणो मे नैवेद्य बना।

यह क्षण कीमती है—और छलांग लग सकती है।

पीड़ा को भी उत्सव बना लेने की कला ही तो प्रार्थना है, पूजा है।

२५-२-१९७१

[प्रति श्रीमती तृप्ता सिगल, जालन्धर]

१०४/वही है, वही है—सब ओर वही है

प्यारी कुसुम,

प्रेम। बांसुरी हो किसी की—गीत उस एक के ही है।

दिये हो किसी के—ज्योति उस एक की ही है।

इसलिए बांस की पोगरियों को भूल—और स्मरण रख पार के सगीत को ही।

मिट्टी के दियो को विस्मरण कर—और ध्यान दे सदा उस ज्योतिर्मय पर ही।

फिर तुझे पक्षियों के गीतो में भी भगवद्गीता सुनाई पडेगी।

और भोर के स्वरों में भी उपनिषद् के महावाक्य ध्वनित होते दिखाई पडेगे।

फिर तू आकाश मे पायेगी उसका ही विस्तार।

और पृथ्वी पर भी उसके ही पदचिह्न।

कण-कण मे उसकी ही छवि।

और क्षण-क्षण मे उसके ही हस्ताक्षर।

बस माध्यमों को भूल।

उपकरणो को ध्यान से हटा।

और फिर निराकार से आकारो की झीनी-सी ओट अनायास ही गिर जाती है।

२५-२-१९७१

[प्रति सुश्री कुसुम, लुधियाना, पजाब]

१०८/संकल्प के पंख—साधना में उड़ान

मेरे प्रिय,

प्रेम । सकल्प कठिन तो है—लेकिन असभव नही ।

फिर करने से ही पैदा होता है ।

जैसे तैरना तैरने से ही आता है, ऐसे ही संकल्प भी सकल्प करने से ही आता है ।

तैरने की कोई विधि थोड़े ही है ?

जिसे तैरना नही आता है उसे भी पानी म छोड दे तो वह भी तैरता है—यद्यपि अव्यवस्थित और आत्मविश्वास से रहित ।

अभ्यास से तैरना सिर्फ व्यवस्थित होता है ।

और व्यवस्था से आत्म-विश्वास (self-confidence) पैदा होता है ।

सकल्प करो और हाथ-पैर फेंको—तडफडाओ ।

धीरे-धीरे व्यवस्था भी आयेगी और आत्म-विश्वास भी ।

और जब सकल्प पैदा होता है तभी साधना को पख मिलते है ।

२५-२-१९७१

[प्रति श्री सरधारी लाल सहगल, अमृतसर, पंजाब]

१०६/मुझसे मिलने का निकटतम द्वार—गहरा ध्यान

प्रिय राज,

प्रेम ! नही, मेरी यात्रायें बन्द होने से तुम्हारी अन्तर्यात्रा नही रुकेगी।

शायद मुझे सामने न पाकर तुम मुझे भीतर खोजने लगो।

और खोजा तो वहाँ मैं जरूर ही मिल जाऊ गा।

और निश्चय ही उस मिलन का मूल्य ज्यादा है।

इसलिए चिन्ता में जरा भी न पडो—वरन् शक्ति और सकल्प से ध्यान की गहराई मे उतरो।

क्योकि, जब मुझसे मिलन का निकटतम द्वार वही है।

२५-२-७१

[प्रति श्रीमती राज शर्मा, द्वारा—श्री सरदारी लाल शर्मा, ५४६।४ प्रतापगली, प्रताप बाजार, अमृतसर, पजाब]

प्रिय सुमित्रा,

प्रेम। सन्यास का मन है तो मन से तो सन्यास ले ही लो।

बाह्य परिवर्तन की जब सुविधा मिले तब कर डालना।

स्वयं को तो सन्यास में ही जानो और उसी भांति जियो।

फिर जब परिवार और प्रियजनो को तुम्हारे जीवन-रूपान्तरण की प्रतीति होगी तो वे भी बाधा नही बनेंगे।

अन्तत तो वे भी तुम्हारे मगल की ही कामना करते हैं न ?

२५-२-१९७१

[प्रति : श्रीमती सुमित्रा जी द्वारा—श्रीव्रजभूषणदास-नारणदास कसारा, आनन्द कुटीर, लुन्सीकुई, गुजरात]

१०८/क्रोध के दर्शन से क्रोध की ऊर्जा का रूपान्तरण

प्रिय आनन्द अशोक,

प्रेम । जब क्रोध आये तो दो-चार गहरी साँसें लेना और क्रोध के साक्षी बनना ।

क्रोध न तो करना ही और न क्रोध से लड़ना ही ।

क्रोध को देखना ।

क्रोध के दर्शन से क्रोध की ऊर्जा (Energy) क्षमा में रूपान्तरित हो जाती है ।

पूछोगे क्यों ?

ऐसे ही जैसे १०० डिग्री तापमान पर पानी वाष्पीभूत हो जाता है ।

या, ऐसे ही जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से जल निर्मित हो जाता है ।

२५-२-१९७१

[प्रति : स्वामी आनन्द अशोक, श्री ए० एम० परदेशी, एफ/४, सर्वेंट्स क्वार्टर, दापोडी, पूना–१२]

१०९/स्वरहीन-संगीत में डूबो

प्रिय आनन्द विजय,

प्रेम। निकट ही है जीवन-स्रोत।

उसके पूर्व ही नाद-ब्रह्म का अवतरण होता है।

नाद मे डूबो और नाद से एक हो जाओ।

इस स्वरहीन सगीत में डूबे कि स्वय को पाया।

खोया स्वय को कि पाया।

२५-२-१९७१

[प्रति . स्वामी आनद विजय, जबलपुर]

११०/समष्टि को बांट दिया ध्यान ही समाधि बन जाता है

प्रिय योग यशा,

प्रेम। ध्यान के बाद प्रार्थना किया कर कि ध्यान में मिली शांति और आनंद सब ओर बिखर जावे—सबको मिल जावे।

ध्यान करना है तुझे लेकिन फल समष्टि को बांट देना है।

तभी ध्यान समाधि बनता है।

२५-२-१९७१

[प्रति मा योग यशा, आजोल, गुजरात]

१११/प्रभु द्वार पर हुई देर भी शुभ है

मेरे प्रिय,

प्रेम। ठीक समय शीघ्र ही आ जायेगा।

अवसर की प्रतीक्षा करें।

संन्यास को भीतर से तो जीने ही लगें।

बाहर का परिवर्तन तो छाया की भांति है।

वह भी आ जायेगा।

लेकिन, बाह्य-परिवर्तन के लिए रुकें नहीं।

अपने तईं तो समझ ही लें कि संन्यासी हैं।

जगत् के प्रति घोषणा समय से हो जायेगी।

और निराश जरा भी न हों—प्रभु द्वार पर हुई देर भी शुभ है—क्योंकि वह धैर्य की परीक्षा है।

२६-२-१९७१

[प्रति डॉ० बी० जी० अवस्थी, अब स्वामी प्रेम विजय, पूर्वी घमापुर, जबलपुर]

११२/समझ (Understanding) ही मुक्ति है

प्रिय सुशीला,

प्रेम। समर्पण-भाव से जियें तो चरण स्वत. ही प्रभु-मदिर तक पहुँच जाते है।

जीवन अत्यत सहज-यात्रा है।

ऐसे ही जैसे कि नदियाँ बहती हैं और सागर तक पहुँच जाती हैं।

या कि फूल खिलते है।

या कि पक्षी गीत गाते हैं।

लेकिन, मनुष्य की अस्मिता (Ego) सहज को कठिन कर देती है और सरल को जटिल बना देती है।

अहकार एकमात्र असत्य है।

और केवल उसके आसपास ही उलझाव है और गाठें है।

और यह समझ मे आई बात कि छुटकारा है।

क्योंकि समझ (*understanding*) ही मुक्ति है।

२६-२-१९७१

[प्रति श्रीमती सुशीला देवी, म० न० ५३६६।४ डाकखाने के पास, पजाबी मुहल्ला, अम्बाला छावनी, पंजाब]

११३/संन्यास—रूपान्तरण की कमियाँ

प्रिय विजय मूर्ति,

प्रेम । सन्यास की अलकेमी (Alchemy) ऐसी ही है ।

निर्णय लेते ही जीवन रूपातरित होने लगता है ।

निर्णय, (decision) साधारण घटना नहीं है ।

क्योंकि, संन्यास का निर्णय सकल्प भी है और समर्पण भी ।

अब तुम वही नही हो जो कि संन्यास के पूर्व थे ।

इसलिए, पुरानी आदतें अपने आप बिखर गई है तो आश्चर्य नही है ।

असल में उनके सगठन का पुराना केन्द्र ही जब टूट गया है तो उसके बचे रहने का कोई भी उपाय नहीं है ।

२६-२-१९७१

[प्रति . स्वामी विजय मूर्ति, १७५९ लक्ष्मी रोड, २रा माला, पूना]

११४/उसका होना ही उसका ज्ञान भी है

मेरे प्रिय,

प्रेम । भूकम्प होता है तो कैसे जानते हैं ?

क्या किसी से पूछकर ?

या किसी किताब से लक्षण मिला कर ?

ऐसे ही जब अन्तस् में विस्फोट (Explosion) होता है तब उसे भी सीधा (Immediate) ही जान लिया जाता है ।

उसका होना ही उसका ज्ञान भी है ।

२६-२-१९७१

[प्रति· श्री प्रेमसिंह, ग्राम एवं पो० मानो लगा, जि० कपूरथला, पंजाब]

११५/जागे बिना सत्य से परिचय नहीं

मेरे प्रिय

प्रेम। आँखे खोले बिना सूर्य से पहचान कैसे हो ?

जागे बिना तो सत्य से परिचय नहीं हो सकता है ?

और उनके लिए क्या कहा जाये जो कि आँखें बन्द किये ही प्रकाश के सम्बन्ध में निर्णय देते हैं ?

प्रभु की तुम पर अनुकम्पा है कि तुम ऐसी भूल से बच गये।

उसका अनुग्रह मानो और आगे भी द्वार हैं जिन्हें खोलो—और आगे भी मार्ग हैं जिन पर यात्रा करो—और आगे भी मंजिलें हैं जिन तक पहुंचो।

और मैं जानता हूं कि तुम अब आगे बढ़ सकोगे क्योंकि पहली और सबसे कठिन बाधा टूट गई है।

२६-२-१९७१

[प्रति श्री सुरेश एन० जानी, १ मुकुन्द कुन्द सोसायटी, नारायणपुरा, अहमदाबाद-१३]

११६/साधना को तो सिद्धि तक पहुँचाना ही है

प्यारी धर्म सरस्वती,

प्रेम। सन्यास के सम्बन्ध में पुरानी धारणाओ के कारण प्रियजनो को समझने मे कठिनाई होती है, जो कि स्वाभाविक है।

लेकिन उससे चिन्ता में न पड।

हाँ, उन्हे सन्यास की नयी दृष्टि को सादर समझाने की कोशिश जरूर कर।

जो तुझे प्रेम करते हैं, वे निश्चय ही तेरी स्थिति को समझ सकेंगे।

और तू उनकी शुभकामनायें भी पा सकेगी।

संकल्प को तो पूरा करना है।

साधना को तो सिद्धि तक पहुचाना ही है।

निश्चय ही मार्ग मे अनेक बाधायें आयेंगी उन्हे भी साधना मे सहयोगी बनाना है।

प्रभु के प्रति समग्र समर्पण से आगे बढ और सब चिन्तायें उस पर ही छोड दे।

२६-२-१९७१

[प्रति० मा धर्म सरस्वती, रूम न० २४, एम० ई० एस० कालेज हास्टल, कर्वे रोड, पूना–४]

११७/सदा स्मरण रखें—जीवन है एक खेल

मेरे प्रिय

प्रेम । जीवन को गम्भीरता से लिया कि कठिनाई में पड़े ।

जीवन है एक खेल (Game) ।

इसे सदा स्मरण रखें तो फिर और कुछ भी स्मरण रखने की आवश्यकता नहीं है ।

२६-२-१९७१

[प्रति श्री प्रेमकुमार गांधी, गांधी स्टोर, चन्द्रपुर, महाराष्ट्र ।]

११८/साहस—अज्ञात में छलाँग का

प्रिय चित्रा,

प्रेम। भय के अतिरिक्त और किसी बात से भय न कर।

मैं तेरी आत्म-स्थिति भलीभाँति जानता हूं इसलिए ध्यान में तू साहस से आगे बढ़।

साहस की कमी ही तेरे लिए एकमात्र बाधा है।

ध्यान में सब भूल और केवल ध्यान को ही याद रख।

शक्ति पूरी लगा—जरा भी अपने को मत बचा।

ध्यान है अज्ञात में छलाग।

इसलिए बहुत हिसाबी-किताबी मन उस अज्ञात मे उतरने के हर्षोन्माद से वञ्चित ही रह जाता है।

२६-२-१९७१

[प्रति सुश्री चित्रा जानी, १३, सुभाष नगर, अहमदाबाद–४]

११९/जिन खोजा तिन पाइयाँ

मेरे प्रिय,

प्रेम । तुमने पूछा है कि "अपने करने से क्या होता है—वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है ।" और, "खुदी को कर बुलन्द इतना कि खुदा खुद बन्दे से पूछे कि बता तेरी रजा क्या है ?—इन दोनो में से कौन-सी दृष्टि ठीक है ?

मेरे देखे—दूसरे सूत्र को साधो तो पहले सूत्र की सिद्धि होती है ।

दूसरा सूत्र है साधकों के लिए और पहला है सिद्धो की अभिव्यक्ति ।

और जिसने इससे उल्टा समझा उसका शीर्षासन लग जाता है ।

पहले को बिल्कुल भूल जाओ ।

चलो दूसरे पर और अन्ततः तुम पहले पर पहुंच जाओगे ।

दोनो सूत्रो में न तो विरोध ही है और न चुनाव ही ।

उन्हे विकल्प मत बनाना और न ही उनमें से चुनाव ही करना ।

२६-२-१९७१

[प्रति श्री इन्द्रशर्मा, गोकुला पेठ, नागपुर, महाराष्ट्र]

१२०/अथक श्रम—और परीक्षा धैर्य की

प्यारी लीला,

प्रेम। हो सकेगा आत्म-साक्षात्कार।

कठिन तो है अवश्य।

पर असम्भव नही।

चाह की गहराई पर सब कुछ निर्भर है।

और मैं जानता हू कि तेरी चाह गहरी है।

ध्यान को बढाती चल।

अथक श्रम करना है।

अज्ञात की अभीप्सा अथक श्रम मागती है।

फल शीघ्र आता हुआ दिखाई न भी पडे तो भी धैर्य रखना है।

धैर्य परीक्षा है।

२६-२-१९७१

[प्रति सुश्री लीला जवेरीलाल, जवेरी निवास, कोचीन–२]

१२१/जीवन को उत्सव बना लेने की कला संन्यास है

प्रिय भक्ति वेदांत,

प्रेम । प्रभु से उसके समस्त रूपों में प्रेम ही प्रार्थना है ।

जहां देखो—उसे ही देखो ।

जो सुनो—उसमें उसे ही सुनो ।

फिर जीवन—मात्र जीना ही उत्सव हो जाता है ।

जीवन को उत्सव—बेशर्त-उत्सव बना लेने की कला ही संन्यास है ।

२६-२-१९७१

[प्रति स्वामी भक्ति वेदांत, अहमदाबाद]

१२२/प्रभु-पथ से लौटना नहीं है

प्रिय राधा,

प्रेम । संघर्ष करना ही होता है ।

लेकिन, आनंद से कर ।

प्रभु को सुमरती हुई कर ।

राह निकल ही आयेगी ।

जहां संकल्प है वहां शक्ति के अनजाने स्रोत उपलब्ध हो जाते है ।

इतना ही स्मरण रख कि प्रभु-पथ से लौटना नही है ।

२६-२-१९७१

[प्रति मा योग राधा, विश्वनीड, आजोल, गुजरात]

१२३/स्वयं को खोकर ही पा सकोगे सर्व को

मेरे प्रिय,

प्रेम। घबड़ायें यदि शून्य में खोने से तो स्वयं को फिर न पा सकोगे।

डरे यदि मिटने से तो फिर अमृत से मिलन नहीं है।

आह ! कमल के पत्ते पर सागर में गिरने से भयभीत बूंद !

उस बेचारी को क्या पता कि सागर में खोना—खोना नहीं, सागर होना है।

२६-२-१९७१

[प्रति श्री महेन्द्र प्रसाद जायसवाल, ईशीपुर, जिला-भागलपुर, बिहार]

१२४/शून्य में नृत्य और स्वरहीन संगीत

मेरे प्रिय,

प्रेम । ऐसे ही जियो कि अस्तित्व का कण-कण आंदोलित कर ।

ऐसे ही हो जाओ कि अतत तुम न बचो और मात्र आंदोलन ही बच ।

शून्य मे हो उनका नृत्य ।

और स्वरहीन हो उनका सगीत ।

फिर हो समाधि है ।

२६-२-१९७१

[प्रति श्रीरामकृष्ण कथूरिया, राजकोट–२]

१२५/'न-करना' है करने की अंतिम अवस्था

मेरे प्रिय,

प्रेम। छोड़ दो—सब छोड़ दो प्रभु पर।

छोड़कर भी तो देखो।

छोड़ने का अलौकिक स्वाद भी तो लो?

किया बहुत—और पाया क्या?

अब न करके भी देखो।

'न करना' मनुष्य के 'करने' की अंतिम अवस्था है।

२६-२-१९७१

[प्रति श्रीयुत पूरनचन्द, फाइन आर्ट्स प्रेस, प्रताप बाजार, अमृतसर, पंजाब]

१२६/अहंकार की सीमा

प्रिय गीत गोविंद,

प्रेम। अहंकार का सुरक्षागत मूल्य (Survival Value) है।

वह है तो अकारण नहीं है।

लेकिन फिर एक सीमा पर वही बाधा भी बन जाता है।

सीढ़ी से चढ़ना पड़ता है और फिर उतरना भी।

सीढ़ी पर न चढ़े भी नहीं चलेगा और सीढ़ी को ही मंजिल माना तो भी आत्मघात है।

४-३-१९७१

[प्रति स्वामी गीत गोविंद, अहमदाबाद-९]

१२७/स्वय को समझो

प्रिय गीतगोविन्द,

प्रेम । स्वय को स्वीकार करने का प्रयास मत करो ।

क्योंकि, वह भी गहरे में अस्वीकार की ही घोषणा है ।

स्वयं को समझो भर !

और अंतत स्वय की समझ ही स्वय की स्वीकृति बन जाती है ।

५-३-१९७१

[प्रति स्वामी गीत गोविंद, अहमदाबाद-९]

१२८/एक मात्र यात्रा—अन्तस् की

प्रिय योग उमा,

प्रेम । छोड़ना कुछ भी नहीं है सिवाय अस्मिता के ।
वही है स्वप्नो की जननी ।
या ससार की ।
जाना भी कही नही है सिवाय अन्तस् के ।
क्योकि, उसके अतिरिक्त कही भी जाओ, अधकार है ।
या ससार है ।

५-३-१९७१

[प्रति मा योग उमा, पूना]

१२९/पर करो—कुछ तो करो

प्यारी विमल,

प्रेम । सभी मार्ग उसी के हैं ।
सभी द्वार उसी के द्वार हैं ।
ज्ञान हो, कि कर्म, कि भक्ति ।
भेद कोई नही है ।
पर करो—कुछ तो करो ।
सोचते रहने से ही तो नही चलेगा न ?

५-३-१९७१

[प्रति श्रीमती विमला सिंहल, अब मा योग विभूति, रतन निवास, म० न० ३५ नीमच कैण्ट, नीमच, म०प्र०]

१३०/पहले समझो ही

मेरे प्रिय,

प्रेम। करने की बहुत जल्दी न करो।

पहले समझो ही।

पूरी समझ हो तो करना स्वयं ही उससे निकलता है।

और समझ से सहज ही करना न निकले तो समझो कि समझ ही पूरी नहीं है।

५-३-१९७१

[प्रति श्री शंकर बी० रामी, अहमदाबाद]

१३१/अति सूक्ष्म हैं—अहंकार के रास्ते

प्यारी मृणाल,

प्रेम । अहंकार के रास्ते अति-सूक्ष्म हैं ।

और उलझे हुये भी ।

विनम्रता की आड में भी वह निवास बना लेता है ।

वह है तो किसी भी रूप में प्रगट होता है ।

तप मे भी—तपश्चर्या मे भी ।

दान मे भी—धर्म मे भी ।

प्रेम मे भी—प्रार्थना मे भी ।

राष्ट्र, देश, धर्म—कोई भी उसका रथ बन सकता है ।

वह है तो कहीं भी होगा ही ।

गुप्त-अंधेरे में—अचेतन में सक्रिय ।

इसलिए, क्रियाओं को मिटाकर उसे नहीं मिटाया जा सकता है ।

वह न हो इसके लिए सीधा आक्रमण आवश्यक है ।

सीधा आक्रमण अर्थात् अहंकार का आमना-सामना (Encounter) ।

और मजा यह है कि जो किसी भी भांति नहीं मिटता है वह आमने-सामने पाया ही नहीं जाता है ।

और जब वह नहीं है तो कहीं भी नहीं है ।

सिंहासनों पर भी नहीं ।

अन्यथा वह शहीदों की सूलियों पर भी है ।

५-३-१९७१

[प्रति सौ० मृणाल जोशी, पूना]

१३२/अपनी चिन्ता पर्याप्त है

मेरे प्रिय,

प्रेम। ससार की चिन्ता न करो।

अपनी ही चिन्ता क्या पर्याप्त नही है?

६-३-१९७१

[प्रति श्री शकर बी० रामी, डीलक्स गारमेंट, रतन पोल, जवेरीवाड नाका, अहमदाबाद—१]

१३३/फूल, काँटे और साधना

मेरे प्रिय,

प्रेम। निराशा का कोई कारण नही है।
साधना के मार्ग पर काँटे हैं जरूर—लेकिन वे सब फूलो के रक्षक हैं।
और जब भी काँटे मिलना शुरू हो तो जानना कि फूल निकट हैं।

६-३-१९७१

[प्रति स्वामी विजय मूर्ति, पूना-२]

१३४/जीवन है एक चुनौती

प्रिय प्रेम निवेदिता,

प्रेम । निश्चय ही जीवन है एक चुनौती ।

और जो उसे स्वीकार नही करते वे व्यर्थ ही जीते है ।

यत्रवत् जीना जीना नहीं है।

६-३-१९७१

[प्रति मा प्रेम निवेदिता, घाटकोपर, बम्बई]

१३५/छलांग—बाहर—शरीर के, संसार के, समय के,

प्रिय धर्म सरस्वती,

प्रेम । ध्यान मे शरीर झूमता है तो भय न करना ।
वरन् उसे आनन्द से सहयोग देना ।
शरीर के साथ झूमो ।
मन को भी झूमने दो ।
और आत्मा को भी ।
झूमना नृत्य बन जायेगा ।
और नृत्य की अति में ही छलांग है ।
शरीर के बाहर—संसार के बाहर—समय के बाहर ।

६-३-१९७१

[प्रति मा धर्म सरस्वती, पूना-४]

१३६/स्वय की खोज ही संन्यास है

प्रिय योग उमा,

प्रेम। भूलो बाहर को और डूबो प्रभु में।

बाहर दु ख है।

और नर्क है।

भीतर, और केवल भीतर ही सुख है।

या, स्वर्ग है।

खोजो स्वय से ही उस बिन्दु को जिसके कि पार और भीतर नहीं है।

यही खोज सन्यास है।

ससार मे परिस्थिति की बदलाहट सन्यास नही है।

परिस्थिति नही—मन स्थिति बदलनी है।

६-३-१९७१

[प्रति मा योग उमा, पूना]

१३७/पागल होने की विधि है यह—लेकिन प्रज्ञा में

प्रिय आनन्द विजय,

प्रेम। जो तुम्हारी कल्पना में नहीं था, वह हो रहा है न ?
तुम्हारा कुसूर नहीं—आदमी की कल्पना ही बहुत गरीब है।
और फिर कल्पना भी तो ज्ञात (Known) की ही हो सकती है ?
अज्ञात (Unknown) की कल्पना का उपाय भी तो नहीं है ?
और सत्य अज्ञात है।
और सुन्दर अज्ञात है।
और शिव अज्ञात है।
पर अब तुम ज्ञात की परिधि से अज्ञात के शून्य मे कूद रहे हो।
मरने की तैयारी है यह—लेकिन अमृत में !
पागल होने की विधि है यह—लेकिन प्रज्ञा में।

६-३-१९७१

[प्रति स्वामी आनन्द विजय, जबलपुर]

१३८/प्रभु-प्रकाश की पहली किरण

प्रिय नयना,

प्रेम। तेरे अनुभव से अति-आनन्दित हू।

द्वार खुल रहा है और प्रभु-प्रकाश की पहली झल्क तेरे प्राणो मे उतरी है।

अब पूरी शक्ति से श्रम कर।

लोहा जब गर्म हो तभी चोट उपयोगी है।

६-३-१९७१

[प्रति कुमारी नयना, द्वारा-श्री मनुभाई एन० वोरा, ५, सगम सोसायटी, सरेद्रनगर, गुज०]

१३९/अस्वस्थता को भी अवसर बना लो

प्यारी मधुरी,

प्रेम । जानता हू कि शरीर तुम्हारा स्वस्थ नही है ।

उसकी सेवा करना—लेकिन चिन्ता नही ।

वरन् उसके अस्वास्थ्य में भी अन्तरतम मे स्वस्थ रहना ।

स्वय को शरीर से भिन्न जानो तो यह अनुभव कठिन नही है ।

और इस भाँति अस्वास्थ्य को भी अवसर बनाया जा सकता है ।

उसे अवसर बना ही लो ।

जरा-सी बुद्धिमत्ता और अभिशाप वरदान हो जाते हैं ।

६-३-१९७१

[प्रति · सुश्री मधुरी, द्वारा—श्री पुष्करभाई गोकाणी, द्वारका]

१४०/दिन रातकी धूप-छाँव में स्वयं को भूल मत जाना

प्यारी जयश्री,

प्रेम। दिन-रात की धूप-छाँव मे स्वय को भूल मत जाना।
समय के चक्र में समयातीत की स्मृति ही आनन्द का द्वार है।

६-३-१९७१

[प्रति . सुश्री जयश्री, द्वारा—श्री पुष्कर भाई गोकाणी, जवाहर रोड, द्वारका, गुज०]

१४१/नियति का बोध परम आनन्द है

प्रिय गीत गोविन्द

प्रेम । कुछ बनना चाहा कि भटके ।
भटकने की वह रामबाण औषधि है ।
जो हो, बस वही हो सकते हो ।
या कि जो हो सकते हो, वही हो ।
नियति का बोध परम आनन्द है ।

६-३-१९७१

[प्रति स्वामी गीत गोविन्द, अहमदाबाद-९]

१४२/स्वनिर्मित कारागृहों में कैद आदमी

प्यारी कुसुम,

प्रेम। सूर्य है सदा द्वार पर।

पर आदमी की आँखे है बन्द।

आकाश-सी स्वतन्त्रता है चारो ओर।

पर आदमी है कि स्वनिर्मित कारागृहो मे कैद है।

पख है पास मे कि उड़ान भरी जा सके तारो तक।

पर अज्ञात मे स्वय को छोड़ने का साहस सुप्त है।

७-३-१९७१

[प्रति श्रीमती कुसुम, लुधियाना]

१४३/समय रहते जाग जाना आवश्यक है

प्यारी नीलम,

प्रेम। पानी पर खींची लकीरें जैसे खिंच भी नहीं पाती और मिट जाती है, ऐसा ही क्षण-भंगुर यह जीवन है।

श्वासों की गति की भांति।

आई श्वास और गई—ऐसा ही यह जीवन है।

और जो इस आते-जाते में ही चुक जाता है, वह स्वयं को अकारण ही खो देता है।

समय रहते जाग जाना आवश्यक है।

७-३-१९७१

[प्रति सुश्री नीलम, लुधियाना]

१४४/अमूर्च्छा का आक्रमण—मूर्च्छा पर

प्यारी मृणाल,

प्रेम। निश्चय ही फूलो की सुवास सा घेर लूगा तुझे।

पीछा करूगा तेरा।

स्वप्नों में भी।

क्योंकि तुझे नींद से जगाना जो है?

७-३-१९७१

[प्रति सौ० मृणाल जोशी, पूना]

१४५/कुछ भी हो—ध्यान को नहीं रोकना

प्रिय अगेह भारती,

प्रेम। ध्यान मे और भी शक्ति लगाओ।

ध्यान के अतिरिक्त शेष समय मे भी ध्यान की स्मृति (Qemembering) बनाये रखो।

जब भी स्मरण आये—क्षण-भर को तत्काल भीतर डुबकी ले लो।

मस्तिष्क मे शीतलता और भी बढ़ेगी।

उससे घबडाना मत—बिल्कुल बर्फ जमी हुई मालूम होने लगे तो भी नही।

रीढ मे सवेदना गहरी होगी और कभी-कभी अनायास कही-कही दर्द भी उभरेगा।

उसे साक्षी-भाव से देखते रहना है।

वह आयेगा और अपना काम करके बिदा हो जायेगा।

नये चक्र सक्रिय होते है तो दर्द होता ही है।

और कुछ भी हो तो ध्यान को नही रोकना है।

जो भी ध्यान से पैदा होता है, वह ध्यान से ही विदा हो जाता है।

७-३-१९७१

[प्रति स्वामी अगेह भारती, जबलपुर]

१४६/देखो स्थिति और हो जाने दो समर्पण

प्रिय अगेह भारती,

प्रेम । क्या समर्पण भी सोच-समझकर करोगे ?

सोच-समझ की व्यर्थता के बोध से ही तो समर्पण फलित होता है ।

और क्या यह भी पूछोगे कि समर्पण की विधि क्या है ?

जहा तक विधियो की गति है, वहा तक तो समर्पण (Surrender) नही ही है ।

और समर्पण भी क्या तुम करोगे ?

जहा तक तुम हो वहाँ तक समर्पण कहा ?

समर्पण क्रिया भी तो नही है—भाषा को छोडकर ।

समर्पण तो समस्त क्रियाओं की कब्र पर खिला फूल है ।

समझो नही ।

करो भी नही ।

देखो स्थिति—और हो जाने दो (Let go) ।

समर्पण को रोको भर मत—बस हो जाने दो ।

जैसे सोते हो रात—बस ऐसे ही ।

क्या है विधि सोने की ?

क्या है क्रिया ?

क्या करते हो तुम ?

थकते हो और पड़ जाते हो—अचेतन के हाथो मे ।

ऐसे ही थक गये हो अस्मिता से तो अब छोड दो स्वय को अज्ञात के हाथो मे ।

छोड दो बस—चुपचाप ।

ऐसे कि आवाज भी न हो ।

८-३-१९७१

[प्रति स्वामी अगेह भारती, जबलपुर]

१४७/नाचो—गाओ और प्रभुकी धुन में डूबो

प्रिय आनन्द विजय,

प्रेम। नाचो—गाओ और प्रभु की धुन मे डूबो।

दूसरो को तो उन्माद ही लगेगा।

लेकिन अब तुम्हारे लिए यही मंगलदायी है कि आनन्द को बांटो।

क्योंकि आनन्द न बटे तो प्राणो पर भारी हो जाता है।

वह जहाँ से आता है वहीं लौटा दो।

वह जिससे आता है उसमें ही लौटा दो।

निश्चय ही बाँटने से वह और बढ़ेगा—लौटाने से वह और लौटेगा।

यही नियम है।

७-३-१९७१

[प्रति स्वामी आनन्द विजय, जबलपुर]

१४८/आनन्द है महामंत्र

प्यारे कचु,

प्रेम। भय से नहीं—अभय से होती है अनन्त की यात्रा।

संकोच से नहीं—विस्तार से होता है असीम से मिलन।

और उदास चरण नहीं—आनन्द से थिरकते चरण ही प्रभु के मन्दिर तक पहुँचते हैं।

आनन्द है महामंत्र।

एक-एक पल आनन्द को स्मरण रखो।

एक-एक पल आनन्द को जियो।

नाचो आनन्द से।

गाओ आनन्द से।

जीवन को बनाओ एक उत्सव।

एक अहोभाग्य।

मेरी दृष्टि में आनन्द ही धर्म है।

१८-४-१९७१

[प्रति श्री कचु, (श्री भालचन्द्र तुरखिया, पूना-२]

१४९/जीवन नृत्य है

प्यारी कुसुम,

प्रेम। आकाश से थोड़ा तालमेल बढ़ा।

आंखों को विराट को पीने दे।

दिन हो या रात—जब भी मौका मिले आकाश पर ध्यान कर।

आकाश को उतरने दे हृदय मे।

शीघ्र ही बीच मे परदा उठने लगेगा।

भीतर और बाहर का आकाश आलिंगन करने लगेगा।

स्वयं के मिटने मे इससे सहायता मिलेगी।

अहं के विसर्जन मे इससे मार्ग बनेगा।

और यदि अनायास ही आकाश पर ध्यान करते करते तन-मन नृत्य को आतुर हो उठे तो स्वयं को रोकना नही—नाचना।

हृदयपूर्वक नाचना।

पागल होकर नाचना।

उस नृत्य मे जीवन रूपान्तरण की अनूठी कुंजी हाथ लग जाती है।

क्योंकि नृत्य ही है अस्तित्व।

अस्तित्व के होने का ढंग ही नृत्यमय है।

अणु-परमाणु नृत्य म लीन है—ऊर्जा अनन्त रूपो मे नृत्य कर रही है।

जीवन नृत्य है।

१३-३-१९७१

[प्रति सुश्री कुसुम, लुधियाना, पंजाब]

प्यारी मीरा,

प्रेम। शक्ति जागती है तो सृजन माँगती है।

और सृजनात्मक (creative) द्वार न मिले तो पीडा देती है।

निश्चय ही वह पीडा प्रसव-पीडा है और जन्मदात्री को उसकी मिठास का कोई अन्त नही है।

तू उसी मिठास-पूर्ण पीड़ा से गुजर रही है।

मीठी है इसलिए छोड भी नही पाती और पीडा है इसलिए छोडना भी चाहती है।

पर जो अब नही हो सकता है उसे करने मे मत पड।

जीवन मे पीछे लौटना असम्भव है।

और अहितकर भी।

आगे बढ—मार्ग अभी बहुत शेष है।

मुकाम को मजिल न समझ।

शक्ति जाग रही है तो उसे अभिव्यक्त कर।

गीत उठ रहा है तो उसे गा और आकाश को समर्पित कर।

बाँध पैरो मे घुँघरू और नाच।

जीवन को उत्सव बना।

द्वार-द्वार प्रभु की खबर ले जा।

प्राणो मे जो है उसे बाहर बहने दे।

सरिता सागर से मिले बिना कब सन्तुष्ट हुई है।

८-३-१९७१

[प्रति मा योग मीरा, जूनागढ]